❀ श्रीः ❀

समीक्षाचक्रवर्ति-विद्यावाचस्पति-महामहोपदेशक,

वैदिकविज्ञानरहस्योद्घाटकविद्वद्वर्य-

स्व० पं० श्रीमधुसूदनओझाजी

विरचिता

आशौचपञ्जिका

सेयं

पं० श्रीसुरजनदासस्वामिना एम्० ए०

साहित्य—व्याकरण—वेदान्त—सांख्ययोगाचार्येण

सम्पादिता।

ग्रन्थकर्तृसूनुना पं० श्रीप्रद्युम्नशर्म्मणा

प्रकाशिता।

द्वितीयावृत्तिः ५००

वि० सम्वत् २००८

मूल्यम् ॥)

॥ श्रीः ॥

* निवेदन *



कुछ ही दिन हुए अर्थात् ता० २५-१२-५१ ई० को "पुराणोत्पत्ति प्रसङ्ग" पुस्तक के द्वितीयावृत्ति के आरम्भ में निवेदन शीर्षक लेख में बहुत कुछ लिख चुका हूँ।

कादम्बिनी तथा **आशौचपञ्जिका** की प्रथमावृत्ति जो क्रमशः वि० सं० १९७६ वि०सं० १९७५ में प्रकाशित हुए थे उनके समाप्त हो जाने पर इन परम उपयोगी पुस्तकों की जब बहुत मांग होने लगी तब वि० सं० १९९९ में इनके प्रकाशन का आयोजन कर कादम्बिनी की द्वितीयावृत्ति तो हिन्दीभाषानुवादसहित प्रकाशित करा दी। परन्तु आवश्यक होते हुए भी आशौचपञ्जिका की द्वितीयावृत्ति उस समय हम न करा सके। आज ठीक १० वर्ष बाद उसी आशौचपञ्जिका की द्वितीयावृत्ति बहुत समय से प्रतीक्षा करने वाले पाठकों तथा अन्य विद्यानुरागी महानुभावों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं।

उक्त ग्रन्थ का यद्यपि अक्षरशः हिन्दीभाषानुवाद तो नहीं हुआ है क्योंकि उसकी आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती है। परन्तु इसके विषयों को भली प्रकार समझने के लिये हिन्दी भाषा में इसका सारांश स्वामी सुरजनदासजी एम० ए० ने बड़े ही परिश्रम से इस प्रकार विस्पष्ट किया है कि हिन्दीभाषाभाषी इसके प्रत्येक विषय को करतलामलकवत् समझ सकेंगे।

इस प्रकार ग्रन्थों के भाषानुवाद या सारांश आदि से उसकी उपयोगिता तो वास्तव में बहुत बढ़ जाती है अर्थात् संस्कृत के विद्वानों के अतिरिक्त विद्या प्रेमी हिन्दी भाषा में विशेष रुचि रखने वाले भी इससे पूरा लाभ उठा सकते हैं जिनकी गणना भी संप्रति संस्कृत जाननेवालों से अधिक है परन्तु हम पहले भी अन्य पुस्तकों में यह निवेदन कर चुके हैं कि इससे हमारे मुख्य उद्देश्य (अमुद्रित ग्रन्थों के प्रकाशन कार्य) में बहुत शिथिलता आजाने से बड़ी बाधा उपस्थित हो जाती है और कार्य क्षेत्र को बढ़ाने का साधन हमको नहीं है। अतः हम तो सर्वप्रथम अपने उद्देश्य को ही जहां तक हमारे जीवन काल में हो सके पूरा करने का विचार रखते हैं।

जैसा कि पहले हम कितनी ही बार यह प्रकट कर चुके हैं कि श्रीमान् अलवरेन्द्र आदर्शनृपति की हमारे इस महान् सत्कार्य में बड़ी सहानुभूति रहती है और श्रीमान् को भी पुस्तकों के विशेष प्रचारार्थं यह इच्छा है कि हिन्दी भाषा का भी इसमें आयोजन रहा करे अतः हमने श्रीमान् के आदेशानुसार पुराणोत्पत्तिप्रसङ्ग तथा आशौचपञ्जिका का यह विस्पष्टीकरण हिन्दी भाषा में कराया है आगे भी परिस्थिति के अनुसार यथा साध्य श्रीमान् के आज्ञापालन का पूरा ध्यान रक्खेंगे।

श्रीमान् के इस प्रोत्साहन के लिये हम चिरकृतज्ञ हैं साथ ही भगवान् से हार्दिक सर्वदा यही प्रार्थना रहती है कि श्रीमान् को सपरिवार चिरायु तथा सुखी रक्खें और महाराज का यह विद्यानुराग देशके लिए लाभप्रद हो।

जयपुर
ता० ३१-१२-५१ ई०

निवेदकः—
प्रद्युम्न शर्म्मा ओझा।





वेदविद्यासमुद्धारक स्वर्गीय पण्डित श्रीमधुसूदनशर्म्म मैथिलाः ।

-:।। भूमिका ।।:-

वेदरहस्यप्रकाशक समीक्षाचक्रवर्ती स्वर्गीय पूज्य गुरुवर्य पं० श्री मधुसूदनजी महाराज ने सहस्राब्दियों से विलुप्त वैदिक विज्ञान का पुनरुज्जीवन करने के लिए वेदों में आये हुए ब्रह्म, यज्ञ, धर्म, इतिहास, वेदाङ्ग आदि सभी विषयों पर उनके रहस्यों को प्रकाशित करने वाले ग्रन्थों का निर्माण किया। धर्मरहस्यसंबन्धी पुस्तकें उनने "वेदाङ्गसमीक्षा" प्रकरण के अन्तर्गत आत्मसंस्कारकल्पप्रकरण में रक्खी हैं, क्योंकि धर्म का सम्बन्ध शरीर सत्त्व व चेतन भेद से त्रिधा विभक्त आत्माओं में से सत्त्वात्मा से है और वह इस सत्त्वात्मा का ही प्रधानतया संस्कार करता है।

धर्म मनुष्यसमाज के जीवन का अविच्छिन्न अङ्ग है। मनुष्य धर्म के साथ ही पैदा होता है, जीता है तथा उसके साथ ही मृत्यु को प्राप्त होता है। उसके बिना उसका जीवन अधूरा तथा संकटग्रस्त है। मनुष्यजीवन से यदि धर्म को पृथक् कर दिया जाय तो मनुष्य में मनुष्यता ही क्या रहेगी और उसका अन्य पशु आदि प्राणियोंसे भेद भी किस तरह किया जा सकेगा। इसी लिए तो नीतिकारों ने लिखा है कि—

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥ इति

मनुष्य जब पैदा होता है उस समय अन्य प्राणियों की तरह प्राकृत व असंस्कृत रूप में ही पैदा होता है। फिर उस में संस्कार किये जाते हैं तब वह संस्कृत बनता है। तभी वह मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि कहलाने का वास्तविक अधिकारी बनता है। यह संस्कार ही धर्म है। और यह संस्कार मनुष्य के दोषों को दूर कर उस में गुणों का आधान करता है। इसीलिए संस्कारों का प्रयोजन दोषापनयन व गुणाधान माना गया है। ऐसे इन संस्कारों को प्रत्येक मनुष्य चाहता है। ऐसी स्थिति में कोई भी मनुष्य धर्मविमुख होने की इच्छा नहीं करता। फिर भी जनता इस समय धर्मविमुख क्यों होती जारही है। यदि इसके कारण की गवेषणा की जाय तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि आजकल का मनुष्यसमाज प्रत्येक वस्तु को विज्ञान व तर्क की कसौटी पर कस कर जानना चाहता है। यदि यह साधन नहीं मिलता तो उसकी उस वस्तु पर अश्रद्धा व अरुचि पैदा होजाती है।

धर्म के विषय में भी यही बात है। आधुनिक धार्मिकम्मन्य सम्प्रदाय धर्म के विषय में किसी भी प्रकार के विज्ञान व तर्क को जनता के सम्मुख उपस्थित करने में असमर्थ हैं। यदि कोई धर्म के ज्ञान के लिए उनसे शङ्का व तर्क करता है तो उसे उसी समय नास्तिकता का प्रमाणपत्र देदिया जाता है। धर्मज्ञान के लिये तर्क तो साधन माना गया है फिर उसको नास्तिकता का द्योतक कैसे माना जाय। हमारे शास्त्रों में तो यहां तक लिखा है कि जो तर्क द्वारा* धर्म को जानता है वही वस्तुतः धर्म को जानता है और नहीं। फिर भी धार्मिकम्मन्यों का तर्क को धर्म के विषय में असंगत बतलाना, धर्म के विषय में उनके अज्ञान को सूचित करता है। वे स्वयं उस की उपपत्ति नहीं जानते अतः उत्तर देने में असमर्थ होते हैं। अतः उपपत्ति पूछने वालों को नास्तिकता का प्रमाण देने के अतिरिक्त उनके पास उससे पीछा छुडाने का और रास्ता ही क्या है। किन्तु यह प्रवृत्ति धर्मप्रचार के लिए घातक है। अतः धर्मप्रचारकों को स्वयं धर्म की उपपत्ति जाननी चाहिये और जनता के सामने वह उपपत्ति रखनी चाहिये जिससे जनता में उसका प्रचार हो सके। किन्तु आज तक के बने हुए मध्यकालिक धर्मग्रन्थों में इस बात की कमी मालूम पड़ती है। इसी से उनके अध्ययन करने वालों को धर्मसम्बन्धी विज्ञान व उपपत्ति का ज्ञान नहीं होता और इसी लिये वे दूसरे को भी बतला नहीं सकते।

दूसरी बात यह है कि धर्म के ज्ञान के लिए जितने भी शास्त्र मध्यकाल में बने हैं वे सब ऐसे खण्डन मण्डन व मतभेद से परिपूर्ण हैं कि साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति का, उनका अध्ययन कर, सिद्धान्त पर पहुँचना अत्यन्त कठिन होजाता है। यह बात भी धर्म के प्रति अरुचि व अश्रद्धा पैदा करने में कारण बनी है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर श्रद्धेय पं० जी महाराजने सभी धर्मशास्त्रों का सम्यक् मन्थन कर के धार्मिक जनता के ज्ञान के लिए सारभूत सिद्धान्त को प्रकाशित करनेवाला यह अपूर्व ग्रन्थ बनाया है। इसमें जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त व उसके बाद भी होने वाले आशौच का अत्यन्त स्पष्टता व सरलता से वर्णन है। इसका अध्ययन करने के बाद आशौच के सम्बन्ध में किसी प्रकार का संशय नहीं रहता।

इस ग्रन्थ में आधुनिक तर्कप्रधान जनता के लिए आशौच का स्वरूप, आशौच का कारण, आशौच का प्रभव, सापिण्ड्य आदि वस्तुओं का विज्ञान भी प्रमाण व युक्ति के साथ बतलाया गया है। जिस से आशौच के विषय में उनकी शङ्काओं का समाधान सम्यक्तया हो जाता है। इस तरह यह ग्रन्थ आशौचविषय का अपूर्व ग्रन्थ है। इसकी यथार्थता पाठकों को इसका अध्ययन करने के बाद ही ज्ञात होगी।

---

* आर्षं धर्मोपदेशं च, वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसन्धत्ते, स धर्मं वेद नेतरः॥

इस ग्रन्थ में १ परिभाषाध्याय २ सूत्राध्याय ३ जन्माध्याय ४ मरणाध्याय ५ उत्तर-क्रियाध्याय ६ दोषाध्याय ७ पाताध्याय ८ अतीतकालाध्याय ९ अपवादाध्याय १० वाक्यसंग्रहाध्याय भेद से १० अध्याय हैं।

१—परिभाषाध्याय में आशौचसम्बन्धी पारिभाषिक विषयोंका निरूपण किया है-जैसे आशौच शब्दका क्या अर्थ है, आशौचका संपर्क किससे है? आशौच कितनी प्रकार का है? इत्यादि तत्त्वों का निरूपण किया है।

२—सूत्राध्याय में आशौच की उत्पत्ति कैसे होती है, उसका आश्रय क्या है, उसका संक्रमण कैसे होता है इत्यादि विषयों द्वारा आशौच का रहस्य बतलाया गया है।

३—जन्माध्याय में जन्मसम्बन्धी आशौच का बिचार किया गया है।

४—मरणाध्याय में मरणसम्बन्धी आशौच का निरूपण है।

५—उत्तरक्रियाध्याय में मरने के बाद होने वाली क्रियाओं (शव का स्पर्श करना, उसे ले जाना, सजाना, जलाना) से उत्पन्न होने वाले आशौच का प्रतिपादन है।

६—दोषाध्याय में जन्म मरण आदि को छोड़ कर अन्य दोषों से उत्पन्न होने वाले आशौच का प्रतिपादन है। जैसे अन्यपरिणीता स्त्री घर में रखलेनेके कारण व चन्द्रसूर्यग्रहणादि के कारण होने वाले आशौच का निर्णय है।

७—पाताध्याय में आशौच के काल में दूसरे आशौच के निमित्त के उपस्थित होजाने से परस्पर आशौचकारणों का संघात होजाने से जो आशौच होता है उसका निरूपण किया गया है।

८—अतीतकालाध्याय में आशौच के मुख्यकाल के समाप्त होजाने पर उसका मालूम होने पर जो आशौच होता है उसका निरूपण है। जैसे कि कोई व्यक्ति कलकत्ते में रहने लग गया है और उसके घरवाले शेखावाटी में रहते हैं। उस के घर पुत्र पैदा हुआ और तज्जन्य आशौच का समय समाप्त होगया, फिर उसके बाद उसके पास समाचार पहुंचे, उस समय उस पिता को कितना व कैसा आशौच होगा इसका निरूपण अतीतकालाध्याय में किया है।

९—अपवादाध्यय में आशौचनिमित्त उपस्थित होने पर कैसे कैसे व्यक्तियों को आशौच नहीं लगता, इसी तरह किन किन परिस्थितियों में आशौच नहीं होता इसका निरूपण है।

१०—वाक्यसंग्रहाध्याय में भिन्न २ स्मृतियोंके आशौचप्रतिपादक वचनों का संकलन है। इस तरह इस पुस्तक में आशौचसम्बन्धी सभी विषयों का पूर्ण निरूपण संक्षेप से कर दिया गया है।

भूमिका में सब विषयों का निरूपण न कर आशौच का सम्बन्ध किस समाज से है, आशौच पदार्थ क्या है, आशौच कितनी प्रकार का होता है, आशौच का प्रभव क्या है, तथा आशौच का व्यक्त्यन्तरमें संक्रमण कैसे होता है एवं जन्म मृत्यु सम्बन्धी प्रधान आशौच का संक्रमण सपिण्ड में होता है अतः सापिण्ड्य ही इन दोनों आशौचों में संक्रमण का कारण बनता है। वह सापिण्ड्य पदार्थ क्या है इन्हीं विषयों का संक्षेप में निरूपण किया जा रहा है।

१—आशौच

प्रत्येक व्यक्ति में प्रधानतया शरीरात्मा, अन्तरात्मा, व विशुद्धात्मा इन तीन आत्माओं की सत्ता मानी जाती है। इन्हीं को क्रमशः शरीर सत्त्व व चेतना तथा भूतात्मा, जीवात्मा व क्षेत्रज्ञ भी कहते हैं। इन तीनों में अन्तिम विशुद्धात्मा सर्वथा विशुद्ध है, दोषरहित है, अतः उसके संस्कार की आवश्यकता नहीं। गीता में भी क्षेत्रज्ञ को सर्वथा विशुद्ध, क्षेत्र के धर्मों से असंस्पृष्ट बतलाया है। शेष दो शरीर व सत्त्व दोषसंपृक्त हैं अत एव असंस्कृत है। अतः उनके संस्कार की अपेक्षा होती है। उनमें शरीर के संस्कार दोषमार्जन व गुणाधान को प्रधानतया आयुर्वेद शास्त्र बतलाता है। और सत्त्वात्मा के संस्कार का प्रधानतया धर्मशास्त्र बोधन करता है। यह बात दूसरी है कि शरीर व सत्त्व के परस्पर सम्बद्ध होने से एक के लिए संस्कार बतलाने वाला शास्त्र गौणतया दूसरे के संस्कारोंका भी बोधन करता है। जैसे शरीरके दोषमार्जन व गुणाधान का बोधक आयुर्वेदशास्त्र शरीर से सम्बद्ध अन्तरात्मरूप सत्त्व के भी संस्कार का बोधन करता ही है। इसी तरह अन्तरात्मरूप सत्त्व के संस्कारों का बतलाने वाला धर्मशास्त्र तत्सम्बद्ध उस सत्त्व के आयतनभूत भूत, भौतिक शरीर तथा प्राणसमुदाय के संस्कारों का भी बोधन करता ही है। संस्कार के अन्तर्गत दोषमार्जन, गुणाधान, व स्वास्थ्याधान ये तीन तत्त्व आते हैं। इसमें दोषमार्जन के बिना न गुणाधान हो सकता है और न स्वास्थ्याधान ही। अतः सर्वप्रथम दोषमार्जन की आवश्यकता होती है।

प्रज्ञापराध के कारण आहार विहार आदि के लिए प्रयुक्त द्रव्यों के हीनयोग, मिथ्यायोग व अतियोग से सत्त्व के भीतर जो अशुभरूप मल संचित होते हैं उन मलरूप दोषों को हटाना ही दोषमार्जन है। दोषमार्जन ही शुद्धि संस्कार भी कहलाता है। किन्तु मल पांच प्रकार के हैं अतः उनकी शुद्धि भी पांच प्रकार की है। शारीरिक मलमूत्रादि की शुद्धि १

शय्या, आसन, वसन, भोजन, पात्र आदि द्रव्यों की शुद्धि २ । सापिण्ड्यादिसम्बन्ध के कारण एक दूसरे में संक्रान्त होने वाले जननमरणादिनिमित्तक * अघ की शुद्धि ३ । प्रज्ञापराध के कारण चारित्र्यदोष से पैदा होने वाले पाप की शुद्धि ४ । रज व तमोगुण के अधिकता से दूषित भावों की शुद्धि ५ ।

इनमें जननमरणादिनिमित्तक अघ की शुद्धि बतलाना इस ग्रन्थ का विषय है और उस अघ का सम्बन्ध प्रधानतथा सत्व (अन्तरात्मा) से है । इस तरह यह सिद्ध हो जाता है कि सत्त्वात्मा की शुद्धि ही प्रधानतया धर्मशास्त्र का लक्ष्य है, उसकी शुद्धि बिना शरीर व प्राणादि आयतनों के नहीं होती अतः उसकी शुद्धि भी यहां बोधन करनी पड़ती है ।

२—आशौचपदार्थ

इस अघ की ही आशौच संज्ञा है । पर इस अघ में अपवित्रता क्या है इसमें मतभेद है । कोई ऐसा मानते हैं कि इस अघ से व्यक्ति विहित कर्मों का अधिकारी नहीं रहता अतः कर्मों में अनधिकारिता ही आशौच है ।

कितने ही ऐसा मानते हैं कि आशौच एक ऐसा पुरुष में रहने वाला मलिन अतिशय है जिससे कि पिण्डदान, उदकदान व अध्ययन आदि कर्मों में व्यक्ति का अधिकार नहीं रहता है ।

वस्तुतः संसर्ग संस्रव आदि कारणों से संसर्गी पुरुष में एक अतिशय पैदा होता है वह अतिशय योनिसम्बन्ध व विद्यासम्बन्धवालों में अतिशय शीघ्रता से और विशेषरूप से पैदा होता है यह अतिशय ही आशौच कहलाता है ।

३—आशौचविशेष ।

उपर्युक्त आशौच के कितने ही भेद हो जाते हैं । जैसे इस आशौच के कारण जन्म, मृत्यु, उत्तरक्रिया तथा दोष ये चार है अतः निमित्तभेद से इस आशौच के भी जन्माशौच, मरणाशौच, उत्तरक्रियाशौच, व दोषाशौच ये चार भेद होते हैं । किन्तु ये चारों दोष स्वरूपतः भी आशौच में कारण पड़ते हैं और ज्ञायमान होकर भी । अतः इस तरह से फिर आशौच के दो

---

* वेद में बतलाये हुए कर्मों की फलसिद्धि के प्रतिबन्धक जन्म मृत्यु आदि से पैदा होने वाले अपवित्र एक अपूर्वविशेष को अघ कहते हैं । अन्य मलों से सम्पर्कवाला व्यक्ति ही अपवित्र होता है, किन्तु इस मलका उस व्यक्ति के सम्बन्धियों पर भी प्रभाव पड़ता है, और वे भी अशुद्ध हो जाते हैं ।

भेद हो जाते हैं वस्तुसदाशौच और वासनाशौच। इनमें ज्ञायमानदोषनिमित्तक आशौच ही वासनाशौच कहलाता है।

अधिष्ठान भेद से (आश्रयभेद से) यह आशौच तीन प्रकार का है। १-स्पर्शाशौच, २-कर्माशौच, ३-मङ्गलाशौच। जिसमें केवल शरीरस्पर्शमात्र का निषेध है वह स्पर्शाशौच कहलाता है और उसका आश्रय बहिः शरीर है। और जहां पर विहित वैदिक कर्मों का निषेध होता है वह कर्माशौच कहलाता है और उसका आश्रय अन्तःशरीर है। और जिस आशौच में विवाह, उपनयन, कन्यादान आदि माङ्गलिक कार्यों का निषेध होता है वह मङ्गलाशौच कहलाता है, और उसका आश्रय पुत्रादि का सत्त्वमात्र है। इस तरह अधिष्ठानभेद से यह आशौच तीन प्रकार का होता है।

४–प्रभवचिन्ता

जन्मकाल व मृत्युसमय में आशौच क्यों होता है इसका विचार प्रस्तुत पुस्तक में 'प्रभवचिन्ता'' नामक प्रकरण में किया गया है। उसमें बतलाया है कि शरीर में दो प्रकार के धातु है—प्रसादभूत व मलभूत गुरुत्व से लेकर द्रवान्त* २० गुण जो कि आयुर्वेदशास्त्र में चरक, सुश्रुत वाग्भट आदि में बतलाये गये हैं, तथा रस× असृक्, मांस आदि ७ द्रव्य, प्रसादभूत धातु माने गये हैं। क्योंकि इनके द्वारा शरीर की पुष्टि होती है। इसके विपरीत शरीर से पृथक् होने वाले तथा शरीर से बाहर की तरफ रुखवाले परित्यक्त कफ आदि धातु मलभूत धातु कहलाते हैं, क्योंकि ये शरीर में हानि पहुंचाते है। उनमें आर्तवरूप यह स्त्री-रज, जिससे कि पुत्र-शरीर की उत्पत्ति होती है मलभूत धातु है। क्योंकि इसका शरीर से पृथक्करण होता है और इसका रुख भी बाहर की तरफ है। सभी आत्मा के लिए हानिप्रद होने से ही मल कहलाते हैं।

यह पहिले बतलाया जा चुका है कि शरीर में चेतन, सत्व व शरीराग्नि इन तीन प्रकार के आत्माओं की स्थिति है। उनमें जो मल जिस आत्मा के लिए हानिप्रद होता है, उसी आत्मा के लिए उस मल को अशुचिकर माना जाता है अन्यके लिए नहीं। जैसे शरीररूप आत्मा से परित्यक्त मूत्रपुरीषादि मल शरीररूप आत्मा प्रति हानिप्रद हैं, अतः उनसे शरीर अशुचि होता है न कि सत्त्वात्मा और उस शरीर का स्पर्श करने पर दूसरे के शरीर में ही वह आशौच संक्रान्त होता है न कि परकीय सत्वात्मा में।

---

* गुर्वादयस्तु गुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिनविशदपिच्छिलश्लक्ष्णखरस्थूलसूक्ष्म-सान्द्रद्रवाः विंशतिः। (चरक० सूत्र० १।४८)

गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लक्ष्णसान्द्रमृदुस्थिराः, गुणाः ससूक्ष्मविशदाः विंशतिः सविपर्ययाः ॥

(वाग्भट० सूत्र० १।१६)

× अन्नाद् रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च। अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद् गर्भः प्रसादजः ॥

गर्भस्राव व गर्भपात में डिम्बरूप से परिणत रजोभाग शरीर से परित्यक्त होकर शरीर से बाहर निकल जाते हैं। शरीर से परित्यक्त होने के कारण वे शरीर के लिए हानिप्रद हैं, अतः वे शरीर के आशौच को पैदा करते हैं। यदि गर्भस्राव व गर्भपात होने से पूर्व जीव भी गर्भ में पड़ चुका है तब तो गर्भस्राव व गर्भपात होने पर जीवात्मा का वियोग होने से भी उसमें अशुचित्व आजाता है क्योंकि अधिष्ठानभूत पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पांच धातु तथा चेतना इन छहों का समुदाय पुरुष कहलाता है। गर्भस्राव व गर्भपात में पांचों भूत पञ्चत्व को प्राप्त हो जाते हैं और चेतना के अधिष्ठान नहीं रहते। अतः उस भौतिक शरीर में चेतना के वियोग के कारण अशुचिपना आ जाता है और वह शरीर अपवित्रहो जाता है, और उसका स्पर्श करने वाले दूसरे व्यक्ति के शरीर में भी वह दोष संक्रान्त हो जाता है।

पुत्रका मातृगर्भ के साथ एक नाड़ीसे सम्बन्ध बना रहता है। उस नाड़ीका छेदन प्रसवकालमें कर दिया जाता है। उस नाड़ीके छेदनसे पुत्र सूतीके शरीराग्नि से परित्यक्त हो जाता है तथा उससे सर्वथा पृथक् होजाता है और इसी तरह सूती भी जातककी शरीराग्निसे परित्यक्त व पृथक् हो जाती है। अन्योन्य परित्याग के कारण वे दोनों ही मल कहलाते हैं तथा अशुचित्वके जनक हैं। उन दोनों में वर्तमान वह आशौच तत्-सम्बन्धी पुरुषान्तरों में भी संक्रान्त होता है जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कि वह अशुचित्व सापिण्ड्यादि सम्बन्ध वाले व्यक्त्यन्तरों में भी संक्रान्त होता है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रसवकाल में चेतनाधिष्ठानभूत पृथ्व्यादि पञ्चधातुओं का चेतना धातु से पृथक्करण होता है और इससे जो दोषविशेष होता है वही अशौच है।

अर्थात् पुत्रोत्पत्ति से पूर्व गर्भस्थ पुत्र का एक नाड़ी द्वारा मातृगर्भ से सम्बन्ध रहता है और इस तरह उत्पत्ति से पूर्व पुत्रका मातृशरीरस्थ शरीराग्निरूप चेतना से भी सम्बन्ध है। किन्तु उत्पत्ति के बाद नाडीछेदन कर के मातृचेतना का सम्बन्ध पुत्र से हटा दिया जाता है। इस तरह उत्पत्तिकाल में चेतना के अधिष्ठानभूत धातुपञ्चक का चेतना धातु से पृथक् होना ही आशौच है। यह आशौच साक्षात् संबन्ध से माता तथा पुत्र में रहता है, क्यों कि पुत्र के धातुपञ्चक का मातृचेतना से तथा माता के धातुपञ्चक का पुत्रचेतना से वियोग होता है। किन्तु परम्परा संबंध से यह आशौच माताके तथा पुत्रके सम्बन्धियों में भी संक्रान्त होता हैं।

मरणकाल में भी मृतपुरुष के धातुपञ्चक का चेतना से सम्बन्ध नष्ट होजाता है अतः वहां भी वह चेतना के अधिष्ठानभूत धातुपञ्चक का चेतना से पृथग्भावरूप आशौच मृतपुरुष के शरीर में साक्षात् तथा तत्संसर्गियों में परम्परया संक्रान्त होता है। यह आशौच सम्बन्ध-

रूप सूत्र के द्वारा तत्सम्बद्ध सम्बन्धियों में भी संक्रान्त होता है। संबन्धसूत्रों का आगे निरूपण किया जायगा।

उपर्युक्त रीति से चेतनारहित भूतविकार तथा चेतना के अपकर्षकधर्मवाला पदार्थ आशौचका प्रादुर्भावस्थान है। अर्थात् चेतनारहित भूतविकारों में चेतना के अपकर्षक धर्मवाले पदार्थ में आशौच का प्रादुर्भाव होता है। अतः ये ही आशौच के प्रभव हैं अर्थात् उत्पत्तिस्थान हैं।

किसी एक व्यक्ति में वर्तमान यह आशौच जिन सम्बन्धों को लेकर दूसरे में संक्रान्त होता है वे सम्बन्ध ४ हैं—योनिसम्बन्ध १, विद्यासम्बन्ध २, यज्ञसम्बन्ध ३, तथा अन्य संसर्ग ४।

किसी एक पुरुष से प्रारम्भ कर आगे जो उसकी सन्ततिपरम्परा चलती है वह गोत्र कहलाती है। एक गोत्र में वर्तमान एक शाखा वाले अथवा भिन्न शाखा वाले पुरुषों का जो परस्पर सम्बन्ध होता है वह योनिकृत संबन्ध कहलाता है। किन्तु यह आशौच एक गोत्रवाले सभी पुरुषों में संक्रान्त नहीं होता, अपितु मूलपुरुष से २१ वीं सन्तान तक ही इसकी संक्रांति होती है और उन २१ में भी वह दोष समान रूप से संक्रांत नहीं होता, किन्तु ज्यों ज्यों मूल-पुरुष से विप्रकर्ष होता जाता है वैसे वैसे उस आशौच में भी कमी आती जाती है। इसके लिए हम इन समान गोत्रवालों को तीन भागों में विभक्त करते हैं। उसीके अनुसार उनके आशौच में तारतम्य होजाता है, जैसे मूल पुरुष से ७ वें पुरुष तक की सन्तानपरम्परा सपिण्ड कहलाती है, मूल पुरुष से १४ पुरुष तक की परम्परा सोदक कहलाती है तथा मूल पुरुष से २१ वें तक या उसके आगे की सगोत्र कहलाती है। इन में सपिण्डों को अधिक आशौच, सोदकों को उस से कम, और २१ तक के सगोत्रों को उससे भी कम, और आगे सगोत्र होने पर भी आशौच की संक्रान्ति नहीं होती।

यह योनि सम्बन्ध भी १-मुख्य, २-आरोपित, ३-तृतीय भेद से तीन प्रकारका है।

१—जो अपने गोत्र में पैदा होकर यावज्जीवन अपने गोत्र में रहते हैं और गोत्रान्तर में प्रवेश नहीं करते उनका अपने गोत्र वालों के साथ जो संबन्ध है वह मुख्य संबन्ध कहलाता है जैसे सोदर (सगे) भाइयों और बहिनों का तथा पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रादि का परस्पर में मुख्य सम्बन्ध है।

२—आरोपित सम्बन्ध-सगोत्रीकरण विगोत्रीकरण व विगोत्रसापिण्ड्य भेदसे पुनः तीन प्रकारका है। जो दूसरे गोत्र में पैदा हुए हैं किन्तु बाद में उस गोत्र से हटाकर अपने गोत्र में प्रविष्ट कर लिए गये हैं उनका अपने सगोत्रीय पुरुषों के साथ सम्बन्ध सगोत्रीकरण कहलाता है क्यों कि विगोत्रीय का भी यहां सगोत्रीकरण होजाता है। अतः इसे सगोत्रीकरण इस अन्वर्थ नाम से व्यवहृत किया जाता है। जैसे परगोत्र से आई हुई विवाहिता पत्नी का श्वशुरकुल

वालों के साथ जो सम्बन्ध है वह यही सगोत्रीकरण है और इसी तरह दूसरे के कुल से आये हुए दत्तक पुत्रादियों का प्रतिग्रहीता (दत्तक रूप से लेने वाले पिता) के कुल के साथ जो सम्बन्ध है वह भी सगोत्रीकरण ही है।

अपने गोत्र में पैदा होकर जो संस्कार द्वारा दूसरे गोत्र के बन गये हैं उनका स्वगोत्र वालों के साथ जो सम्बन्ध है वह विगोत्रीकरण कहलाता है। क्योंकि स्वगोत्रीय होते हुए भी उनका संस्कार द्वारा विगोत्रीकरण कर दिया गया है जैसे स्वगोत्रीय दुहिता व दत्तक पुत्र आदि का विवाह व दूसरे के दत्तकरूप में चले जाने के बाद विगोत्रता होजाने पर अपने पितृकुलवालों के साथ संबन्ध विगोत्रीकरण होता है। भिन्न गोत्रवाले सपिण्डों का अपने गोत्रवालों के साथ जो सम्बन्ध है वह विगोत्रसापिण्ड्य नामक सम्बन्ध कहलाता है जैसे माता के भाई व पिता के भाई आदि का अपने गोत्रवालों के साथ।

३—तृतीय संबन्ध भी अनेक प्रकार का है।

१—मुख्य सम्बन्ध से सम्बन्धित व्यक्तियों के मुख्य सम्बन्ध से सम्बन्धित जो व्यक्ति हैं उनका सगोत्रवालों के साथ सम्बन्ध इसी प्रकार का है। क्योंकि भाई का अपने गोत्रवालों के साथ मुख्य सम्बन्ध है और उसके पुत्रका उस भाई के साथ मुख्य सम्बन्ध है इस लिए भ्रातृपुत्र के साथ स्वगोत्रीय व्यक्तियों का सम्बन्ध इस तृतीय सम्बन्ध की प्रथम श्रेणि में आता है।

२—मुख्य सम्बन्ध से सम्बन्धित व्यक्तियों के जो आरोपित सम्बन्ध से सम्बन्धी हैं उनके साथ अपने गोत्रवालोंका सम्बन्ध द्वितीय प्रकारका है। जैसे भ्रातृपत्नीका स्वगोत्रवालों के साथ संबन्ध। यहां भाई का स्वगोत्रवालों के साथ मुख्य सम्बन्ध है और इस तरह मुख्य सम्बन्ध से सम्बन्धी भाई के साथ पत्नीका आरोपित सगोत्रीकरण सम्बन्ध है। अतः भ्रातृपत्नी के साथ स्वगोत्रीय व्यक्तियों का सम्बन्ध तृतीय सम्बन्ध की द्वितीय कोटि में आता है।

३—आरोपित सम्बन्ध से सम्बन्धित व्यक्तियों के जो मुख्य सम्बन्ध से सम्बन्धी हैं उनका स्वगोत्रीय व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध तृतीय श्रेणिका है। जैसे जामातृश्वशुर का स्वगोत्रीय व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध। यहां पर जामातृपत्नी के साथ स्वगोत्रीय पुरुषों का सगोत्रीकरणरूप आरोपित सम्बन्ध है और उसी आरोपित सम्बन्ध से सम्बन्धवाली जामातृपत्नी के साथ उसके पिता का मुख्य सम्बन्ध है। इस तरह जामातृश्वसुर के साथ स्वगोत्रीय पुरुषों का सम्बन्ध तृतीय सम्बन्ध को तृतीय श्रेणि में आता है।

४—आरोपित सम्बन्ध से सम्बन्धित के साथ जो आरोपित सम्बन्ध से सम्बन्धी है

उसका स्वगोत्रीय व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध तृतीय सम्बन्ध की चतुर्थ श्रेणि में आता है। जैसे जामातृश्वशुर के भाई के साथ स्वगोत्रीय व्यक्तियों का सम्बन्ध। जामातृपत्नी का स्वगोत्रवालों के साथ सगोत्रीकरणरूप आरोपित सम्बन्ध है और उस पत्नी का भी अपने पिता के भाई के साथ विगोत्रीकरणरूप अथवा विगोत्रसापिण्ड्यरूप आरोपित सम्बन्ध है।

सापिण्ड्यपदार्थ—

यह पहिले कहा जाचुका है कि योनिसम्बन्ध भी आशौच के परपुरुष में संक्रान्त होने का कारण है। यद्यपि योनिसम्बन्ध सहस्रों पीढियों तक बना रहता है फिर भी आशौच २१ वीं पीढी तक ही संक्रान्त होता है उस से आगे नहीं। उन में भी ७वीं पीढ़ी तक के पुरुष सपिण्ड कहलाते हैं, और इन सपिण्डों में सब से अधिक आशौच की संक्राति होती है। इस से आगे सोदक (१४ वीं पीढी तक)के पुरुषोंमें इसकी उत्तरोत्तर न्यून संक्रान्ति होती है। अतः आशौच की संक्रान्ति में प्रधानतया कारण सापिण्ड्य ही ठहरता है और वह सापिण्ड्य ७ वीं पीढी तक ही रहता है। इसी लिए शास्त्रों में "सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्" "सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते" ऐसा कहा है। यह सापिण्ड्यपदार्थ क्या है इसी का यहां निरूपण करना है। यह सापिण्ड्य विवाह, दाय व अशौच सभी में कारण पड़ता है। और ये तीनों सापिण्ड्य अर्थात् विवाहसापिण्ड्य, दायसापिण्ड्य तथा आशौचसापिण्ड्य परस्पर भिन्न भिन्न है। उनमें से यहां आशौच के उपयोगी आशौचसापिण्ड्य का निरूपण करना आवश्यक है अतः उसीका निरूपण सर्वप्रथम किया जारहा है:—

आशौचसापिण्ड्य १–अवयवसापिण्ड्य, २–पुत्र में आधान करने योग्य सापिण्ड्य, ३–पितृपितामहादि पितरों में आधान करने योग्य सापिण्ड्य, तथा ४–देहत्यागोत्तर पित्रादियों में प्रत्यर्पण करने योग्य सापिण्ड्य इस तरह ४ प्रकार का है। इन सब सापिण्ड्यों का निरूपण भी पिण्डपदार्थनिरूपण के अधीन है। अतः सर्वप्रथम पिण्डपदार्थ का निरूपण किया जाता है।

पिण्डपदार्थः—

मूलपुरुष, मूलपुरुष के शरीर का अवयव, शुक्रनिवाप, शोणितनिवाप, अन्नपाक तथा सोमद्रव्य व शोणित द्रव्य इस तरह से पिण्ड अनेक प्रकार का है।

उन अनेक प्रकार के पिण्डों में यहां शुक्रमय पिण्ड का निरूपण किया जायगा।

पञ्चमहाभूतों का विकार व चेतना धातु शुक्र कहलाता है। इस शुक्र द्रव्य में सप्त-कोशात्मक सोमका आधान होता है। सात कोशों में २८ कला का एक कोश है, २१ कलाका

दूसरा, १५ कला का तीसरा, १० कला का चौथा; ६ कलाका पांचवां, ३ कलाका छठा, तथा १ कलाका सातवां कोश है। इस तरह मिलाने पर ८४ कला का यह निवाप्य सोम होता है। यह ८४ कलात्मक सोमद्रव्य कूटस्थ शुक्र में आहित होकर उसके शरीरका अवयव बन जाता है। इस ८४ कलात्मक सोम द्रव्य के ३ भाग हैं। उन में २८ कला का एक भाग कूटस्थ का अपना है। तथा २८-२८ कला के दो भाग पितृपितामहादि से उस में आते हैं। इस प्रकार कूटस्थ पुरुष के शुक्र में ८४ कलात्मक सोमद्रव्य रहता है। जब कूटस्थ पुरुष (मूलपुरुष) पुत्र को पैदा करता है तब अपने २८ कलात्मक सोमकोश से ७ कलायें अपने में रखकर शेष २१ कलाओं का, पितृद्वारा प्राप्त २१कलात्मक कोश में से ६ कलाएं रखकर शेष १५ कलाओं का, पितामह द्वारा प्राप्त १५ कलात्मक कोश में से ५ अपने आप में रखकर शेष १० कलाओं का, प्रपितामह द्वारा प्राप्त १० कलात्मक कोश में से ४ अपने में रखकर शेष ६ कलाओं का, वृद्धप्रपितामह द्वारा प्राप्त ६ कलात्मक कोश में से ३ अपने में रखकर शेष ३ कलाओं का, अतिवृद्धप्रपितामह द्वारा प्राप्त त्रिकलात्मक कोश में से २ अपने आप में रखकर शेष १ कलाका अपने शरीर से माता के शरीर में शुक्रका आधान करते समय आधान कर देता है। अवशिष्ट परमातिवृद्धप्रपितामह से प्राप्त कला का वह आधान कर नहीं सकता, क्योंकि उसका संतनन तभी हो सकता है जब वह उसे अपने आप में रख कर आगे उसका आधान कर सके। वह कम से कम एक कला तो अपने आप में रक्खेगा, उसके बाद संतनन आधान करने के लिए कुछ अवशिष्ट नहीं रहता। इस तरह क्रमशः २१,१५ १०,६,३,१ कलावाले ६ कोशों का ही मातृशरीर में आधान व सन्तनन होता है। इसीलिए उन से उत्पद्यमान पुत्रशरीर षाट्कौशिक कहलाता है और पित्रादि से प्राप्त कला का आगे आधान द्वारा सन्तनन होता है। अतः उसे सन्तान कहा जाता है। इन ६ कोशों की कलाओं को मिलाने से ५६ कलायें होती हैं। ये ५६ कलायें पित्रादि द्वारा पुत्र को शरीरारम्भ के साथ ही प्राप्त होजाती हैं। शेष २८ सौम्यकलायें १६ वर्षों में जाकर २८ नक्षत्रों पर चन्द्रमा के संचार से प्राप्त होती हैं। इस तरह इन २८ को मिला कर ८४ कलात्मक सोमद्रव्य का आधान संतान के शुक्र में पूर्ण हो जाता है। इन २८ कलाओं की प्राप्ति १६ वर्ष में ही जाकर होती है। इसी लिये संतान में शुक्र का परिपाक १६ वर्ष के बाद ही होता है पूर्व नहीं। उस से पहिले वह शुक्र अपरिपक्व व कच्चा रहता है। उससे बलिष्ठ संतान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। मन भी सोमस्वरूप चन्द्रमा से बनता है। इस लिए मनस्विता व विचारशीलता भी मनुष्य में १६ वर्ष से पूर्व नहीं आती किन्तु इसके बाद ही आती है।

अभियुक्तों का निम्नलिखित वचन भी इसी रहस्य को व्यक्त कर रहा है।

जैसे— लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥ इति

१६ वर्ष में पुत्र के साथ मित्र की तरह समानता का व्यवहार करना चाहिये। जैसे मित्र से किसी विषय में मन्त्रणा की जाती है उसी तरह पुत्र से भी की जा सकती है. क्योंकि इस अवस्था में मन की १६ कलाओं की परिपूर्णता से उसमें मनस्विता (विचारशीलता) की शक्ति पैदा होजाती हैं। इसी कारण से १६ वर्ष के बाद पुत्र को वयस्क (बालिग) स्वीकार करलिया जाता है।

इसी रहस्य को समझाने के लिए ॐ छान्दोग्य उपनिषद् में १५ दिन भोजन न करने से मन की एक कला शेष रह जाती है और उसमें मनन करने की शक्ति नहीं रहती, किन्तु फिर भोजन करने से उसकी कलाओं की पूर्ति होजाती है और पूर्ण मननशक्ति व मानशक्ति पैदा होजाती है, एतदर्थक आख्यान की कल्पना की गई है।

मनका निर्माण सोममय अन्न से ही होता है। भुक्त अन्न के शरीरमें तीन प्रकारके परिणाम होते हैं। जो सबसे स्थूल परिणाम है वह पुरीष बन कर शरीर से बाहर निकल जाता है। अन्न का मध्यम परिणाम रस रुधिर मांस आदि सप्तधातुमय होता है और इसी का सूक्ष्म परिणाम मन होता है। इस तथ्य का निरूपण भी छान्दोग्य उपनिषद् में किया गया है। +

ॐ षोडशकलः सौम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः काममयः पिब, आपोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यते इति ॥ १ ॥ स ह पञ्चदशाहानि नाश। अथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इति, ऋचः सौम्य यजूंषि सामानीति। स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति ॥ २ ॥ तं होवाच यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवं सौम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टा स्यात्तया एतर्हि वेदान्नानुभवसि, अशान, अथ मे विज्ञास्यसीति ॥ ३ ॥ स ह आश अथ हैनमुपससाद। तं ह यत्किञ्च पप्रच्छ सर्वं ह प्रतिपेदे ॥ ४ ॥ तं होवाच यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं। तृणैरुपसमाधाय प्राज्वलयेत्। तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥ ५ ॥ एवं सौम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टाऽभूत्, सा अन्नेन उपसमाहिता प्राज्वलीत् तया एतर्हि वेदाननुभवसि। अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः, तेजोमयी वाक्, इति ॥६॥ छान्दोग्य६अ०७ख०।

+ अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति, यो मध्यमस्तन्मांसम्, योऽणिष्ठस्तन्मनः। छान्दोग्य ६ अध्याय, ६ खण्ड। एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति। छान्दोग्य ६ अध्याय ७ खण्ड।

वस्तुतः हम जो अन्न खाते हैं वह द्युलोक अन्तरिक्षलोक व पृथिवीलोक तीनों के रस से बनता है। हम जब अन्न खाते हैं तब जठराग्नि के द्वारा अन्न का परिपाक होने पर उसके आरम्भक पार्थिव आन्तरिक्ष्य व दिव्य तीनों तत्त्वों का सम्बन्धविच्छेद हो जाता है। और उसमें वर्तमान अमृत व मर्त्य भाग का विशकलन हो जाता है। मर्त्य भाग मलरूप में परिणत होता है और वह अपान द्वारा शरीर से बाहर कर दिया जाता है। अमृतभाग में भी विशकलित शुद्ध पार्थिव भाग रस, असृक्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा व शुक्र रूप में क्रमशः परिणत होता जाता है। इस तरह उस अन्न में से पार्थिव भाग के सर्वथा हट जाने पर जो आपोवाय्वात्मक आन्तरिक्ष्य भाग व विद्युत्सोमात्मक दिव्य भाग अवशिष्ट रहता है वह ओज धातुरूप में परिणत हो जाता है। इसके बाद आन्तरिक्ष्य भाग का भी सर्वथा पृथक्करण हो जाने पर जो शुद्ध विद्युत्सोमात्मक भाग बचता है वही मन बनता है। इसलिए यह मन अन्नमय होता हुआ भी अन्न के आरम्भक सोम भाग से बनता है। अतः मन अन्नमय व सोममय दोनों शब्दों से व्यवहृत होता है।

इस तरह पिता पुत्रशरीर का आरम्भ करते समय अपनी २८ कलाओं में से २१ का, पिता द्वारा प्राप्त २१ कलाओं में से १५ कलाओं का, पितामह द्वारा प्राप्त १५ कलाओं में से १० कलाओं का, प्रपितामह द्वारा प्राप्त १० कलाओं में से ६ कलाओं का, वृद्धप्रपितामह द्वारा प्राप्त ६ कलाओं में से ३ कलाओं का, अतिवृद्धप्रपितामह द्वारा प्राप्त ३ कलाओं में से १ कला का मातृशरीर में आधान कर देता है। शेष अपनी ७ कला, पिता की ६ कला, पितामह की ५ कला, प्रपितामह की ४ कला, वृद्धप्रपितामह की ३ कला, अतिवृद्धप्रपितामह की २ कला, तथा परमातिवृद्धप्रपितामह की १ कला, इस तरह मिला कर २८ कला अपने आप में रखता है।

उपर्युक्त रीति से इस बीजी पुरुष का अपने से ६ पूर्वज पित्रादियों के साथ और ६ उत्तरभावी पुत्रादियों के साथ सम्बन्ध विद्यमान है क्योंकि पुत्र में आधान करने के बाद स्वयं बीजी पुरुष में २८ कलायें रहती है। जिनमें उस स्वयं बीजी पुरुष की सात कलायें हैं। शेष ६ पिता की, ५ पितामह की, ४ प्रपितामह की, ३ वृद्धप्रपितामह की, २ अतिवृद्धप्रपितामह की, व १ परमातिवृद्धप्रपितामह की कलायें हैं। अतः उन कलाओं के कारण उसका अपने पूर्वभावी ६ पुरुषों के साथ सम्बन्ध है। और इसी तरह उसने पुत्रोत्पत्ति के लिए जिन ५६ कलाओं का मातृशरीरद्वारा पुत्र में आधान किया है उनमें से २१ कलायें उस बीजी पुरुष की निजी कलायें हैं। उन कलाओं में से पुत्र स्वयं ६ रखता है और शेष १५ का पौत्र में आधान करता है। पौत्र भी १५ में से ५ स्वयं रखता है शेष १० का प्रपौत्र में सन्त-

नन कर देता है। प्रपौत्र भी ४ रखता है शेष ६ का वृद्धप्रपौत्र में आधान कर देता है। वृद्ध-प्रपौत्र भी ३ रखता है शेष ३ का अतिवृद्धप्रपौत्र में आधान कर देता है। अतिवृद्ध-प्रपौत्र भी ३ में से २ रखता है शेष १ का परमातिवृद्धप्रपौत्र में आधान कर देता है। इस तरह २१ कला का सन्तनन ६, ५, ४, ३, २, १ इस क्रम से पुत्र से लेकर परमातिवृद्ध-प्रपौत्र तक की उत्तरभावी ६ सन्तानों में होता है और इसीलिये इसका उत्तरभावी ६ पुरुषों से भी सम्बन्ध होजाता है।

उपर्युक्तरीति से देहत्याग से पूर्व जीवितावस्था में पुत्रोत्पत्ति के बाद इस बीजी (कूटस्थ) पुरुष का ६ पूर्वपुरुषों से और ६ उत्तर पुरुषों से सौम्यकलाओं के द्वारा सम्बन्ध रहता है। पूर्व ६ पुरुषों के साथ अपने आपको मिलाकर 'सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्' की उपपत्ति होती है, और उत्तरभावी ६ पुरुषों के साथ भी अपने आपको मिलाकर 'सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्' की उपपत्ति होती है।

पुत्रोत्पत्ति से पूर्व पिता आदि से इसको ऋणरूप में ५६ सौम्य कलायें प्राप्त हुई थीं। अतः वह पित्रादियों का ऋणी होने से पितृऋणवाला बन जाता है।

पुत्रोत्पत्ति के बाद इसने २१ अपनी, १५ पिता की, १० पितामह की, ६ प्रपितामह की, ३ वृद्धप्रपितामह की, १ अतिवृद्धप्रपितामह की मिलाकर ५६ कलाओं का पुत्र में आधान कर दिया है। अतः पितृऋण से मुक्त हो जाता है। फिर भी अवशिष्ट कलाओं में ७ को छोड़कर शेष २१ पित्रादि की है। अतः पुत्रादि की तरह पित्रादि ६ पुरुषों से भी अभी तक उसका सम्बन्ध बना हुआ है। इसलिए उनकी तृप्ति के लिए वह श्राद्ध द्वारा स्वधारूपा भोजन प्रतिवर्ष दिया करता है और तर्पण आदि भी किया करता है, किन्तु देहत्याग के बाद वह पित्रादि की २१ कलाओं का उनमें प्रत्यर्पण कर देता है। अतः उनसे उसका सम्बन्ध नष्ट हो जाता है। अपने में आगत पितृपितामहादि की कलाओं का व अपनी कलाओं का पुत्र में आधान करने से उसने अपना स्वयं का तथा पित्रादि का सम्बन्ध स्वपुत्रादि से कर दिया है। अतः वे उनके ऋणी बन गये हैं, और वह स्वयं उनके ऋण से मुक्त हो चुका है, इसीलिये उसका पुत्र अब पितरों को स्वधा देता है व श्राद्ध करता है।

किन्तु जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है देहत्याग से पूर्व इस व्यक्ति का अपने पूर्व ६ पितरों से सौम्य कलाओं द्वारा सम्बन्ध था। क्योंकि ५६ कलाओं का पुत्र में आधान करने के बाद जो इसमें २८ कलायें बची थीं उनमें ७ इनकी स्वयं की थीं। शेष २१ में से १ परमातिवृद्धप्रपितामह की २ अतिवृद्धप्रपितामह की, ३ वृद्धप्रपितामह की, ४ प्रपितामह की, ५ पितामह की, व ६ पिता की थीं। देहत्याग के बाद इसने उन कलाओं

का उन पितरों में प्रत्यर्पण कर दिया और वे कलायें उनमें वापिस चली गईं। परमातिवृद्ध-प्रपितामह का केवल १ कला को लेकर मर्त्यलोक से सम्बन्ध बना हुआ था। उसके वापिस मिल जाने के बाद अब वह सर्वथा इस मर्त्यलोक के बन्धन से मुक्त हो चुका है। अब वह निर्मुक्त है तथा पितर श्रेणी से पृथक् हो गया है और पुत्र का जिन ६ पितरों से सम्बन्ध इन सौम्य कलाओं को लेकर बना रहता है उनमें अब उस पुत्र का पिता सम्मिलित हो गया है, जिसने कि देहत्याग के बाद अपने पूर्वजों की कलाओं को वापिस लौटाया था। पुत्र के पिता ने परमातिवृद्धप्रपितामह को छोड़ कर शेष पितरों की कलाओं का आधान अपने पुत्र में किया है क्योंकि उसने पुत्र को जो ५६ कलायें दी हैं उनमें २१ अपनी हैं, १५ पिता की, १० पितामह की, ६ प्रपितामह की, ३ वृद्धप्रपितामह की तथा १ अतिवृद्धप्रपितामह की है। अतः उन कलाओं को लेकर उनका सम्बन्ध पुत्र से व मर्त्यलोक से बना हुआ है। इसलिये वे पुत्र से श्राद्ध व स्वधाकार प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

यही सौम्यकलात्मक श्रद्धासूत्र है जिस श्रद्धासूत्र के द्वारा पुत्रका अपने ६ पितरों से तथा पितरों का अपने पुत्र से सम्बन्ध बना हुआ है। इसी श्रद्धासूत्र के द्वारा श्राद्धक्रिया में प्रदत्त भोजनादि पितरों के पास पहुँचता है। इस तरह ६ पितर और एक पुत्र को लेकर "सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्" की उपपत्ति निरन्तर बनती रहती है। पहिला पितर जैसे ही अपनी सौम्यकलाओं के पूरी वापिस मिलने पर मुक्त होता है वैसे ही नवीन पितर उनमें आकर सम्मिलित हो जाता है और ६ पितरों की संख्या पूर्ववत् बनी रहती है। ७ वां स्वयं पुत्र होता ही है। इस तरह सात संख्या में कोई बाधा नहीं पहुँचती और न अधिक ही संख्या होने पाती है। इसीलिये श्राद्ध ६ पितरों का ही किया जाता है इससे अधिक का नहीं क्योंकि ६ से ऊपर के पितरों के साथ सौम्यकला का सम्बन्ध टूट चुका है। न उन्हें श्राद्ध की आवश्यकता है और श्रद्धासूत्र के अभाव से न उन तक वह पहुंच हो सकता है।

इतने सन्दर्भ से निष्कर्ष यह निकला कि सोममय ८४ कलात्मक शुक्रनिवाप पिण्ड है और उन कलाओं का सम्बन्ध सात व्यक्तियों में ही रहता है अधिक में नहीं। जैसे ही उन कलाओं का सम्बन्ध आगे बढ़ता है अर्थात् उनका भावी सन्तानों में संतनन होता है वैसे ही पूर्व पूर्व से विच्छिन्न होता जाता है और वह सम्बन्ध सात तक ही रहता है। अतः 'सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्' यह उक्ति तथा 'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते' यह उक्ति सर्वथा चरितार्थ हो जाती है।

१—अवयवसापिण्ड्य

इन ८४ कलाओं में २८ कलायें कूटस्थ बीजी पुरुष की हैं जिनका सम्बन्ध केवल

मूलपुरुष के शरीर से है। वह इनमें से ७ को रख कर शेषका क्रमशः ६–५–४–३–२–१ के अनुपात से पुत्र पौत्र, प्रपौत्र, वृद्धप्रपौत्र, अतिवृद्धप्रपौत्र, परमातिवृद्धप्रपौत्र में आधान करता है। और इस मूल पुरुष का उन कलाओं को लेकर उन ६ अपत्यों से सम्बन्ध बना रहता है।

इस तरह इस २८ कला वाले पितृरूप एक शरीर में वर्तमान पिण्ड का ७–६–५–४–३–२–१ के भेद से ७ पिण्डों में विभाग हो जाता है तथा उस २८ कलात्मक पिण्ड के द्वारा पिता से लेकर परमातिवृद्धप्रपौत्र तक के सात व्यक्तियों का परस्पर में सापिण्ड्य सम्बन्ध बन जाता है। यही प्रथम अवयवसापिण्ड्य कहलाता है। क्योंकि पितृरूप एक शरीर में वर्तमान २८ कलात्मक मूलपिण्ड के ही ७ भेद हो कर यह सापिण्ड्य सम्बन्ध हुआ है।

२—पुत्र में निवाप्य सापिण्ड्य

यह सापिण्ड्य जिस पिण्ड की अपेक्षा से बनता है वह मूलपिण्ड ८४ कला वाला है। परमातिवृद्धप्रपितामह से ले कर स्वयं कूटस्थ पुरुष तक के सात शरीरों के अवयव वाला यह मूलपिण्ड कूटस्थ में रहता है। किसके कितने अवयव हैं यह पहिले भी बतलाया जा चुका है और स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये यहां भी बतला दिया जाता है। इन ८४ कलाओं में से परमातिवृद्धप्रपितामह की १, अतिवृद्धप्रपितामह की ३, वृद्धप्रपितामह की ६, प्रपितामह की १०, पितामह की १५, पिता की २१ व स्वयं कूटस्थ की २८ कलायें हैं। इस ८४ कलात्मक सप्तशरीरावयव निवाप्य मूलपिण्ड के द्वारा ६ पितरों का कूटस्थापत्य से सम्बन्ध है। परमातिवृद्धप्रपितामह से आरम्भ कर स्वयं बीजी पुरुष तक ७ पुरुषों के सम्बन्ध का सूत्र यही ८४ कलात्मक मूलपिण्ड है।

३—पितरों में आधेय सापिण्ड्य—

यह पहिले स्पष्ट किया जा चुका है कि ८४ कलात्मक पिण्ड में से पिता (कूटस्थपुरुष) पुत्र में ५६ कलाओं का निवाप (आधीन) कर देता है। उन ५६ कलाओं में २१ कला स्वयं की, १५ पिता की, १० पितामह की, ६ प्रपितामह की, ३ वृद्धप्रपितामह की तथा १ अतिवृद्धप्रपितामह की हैं। और २८ अपने आप में रखता है। जिनमें ७ स्वयं की. ६ पिता की, ५ पितामह की, ४ प्रपितामह की, ३ वृद्धप्रपितामह की, २ अतिवृद्धप्रपितामह की, १ परमातिवृद्धप्रपितामह की हैं। इस प्रकार ८४ कलाओं में से ५६ कलाओं का जो ऋण पितरों से प्राप्त किया था उसमें से ३५ कलाओं का ऋण उसने आगे पुत्र में आधान करके चुका दिया है

और वह उतने ऋण से अनृण हो गया है। फिर भी २१ कलायें पितरों की उसके पास अभी तक बची हुई हैं जिनका प्रत्यर्पण वह पितरों को देहत्याग के बाद करेगा। यद्यपि ५६ कलाओं का आधान उसने पुत्र में कर दिया है। किन्तु उनमें २१ स्वयं की ऋणरूप से उसने पुत्र को दी हैं और शेष ३५ पितरों की कलायें दी हैं। अतः देहत्याग से पूर्व अपने पूर्वज पांच पितरों का ऋण पुत्रोत्पत्ति के बाद भी २१ कलाओं के रूप से उसमें विद्यमान है। और इन कलाओं का देहत्याग से पूर्व वह पितरों को प्रत्यर्पण भी नहीं कर सकता, क्योंकि ये बची हुई २८ कलायें जिनमें २१ पितरों की हैं व ७ अपने हैं शरीरधारण के लिये अपेक्षित हैं। अतः वह पुत्र (कूटस्थपुरुष) देहत्याग से पूर्व उसके बदले में पिण्डभाग को चाहने वाले पितरों को श्राद्धक्रिया द्वारा पिण्डदान करता रहता है।

देहत्याग के बाद पुत्र में आधान करने से बचे हुये पितरों के २१ कलात्मक भाग को वह अपने पितरों को देता है तब उसके पास पितरों का कोई धन नहीं बचता। अब वह निजी ७ कलाओं को ले कर ही अवशिष्ट रहता है, अतः उसे श्राद्ध करने की तथा तद्द्वारा पितरों को पिण्ड देने की आवश्यकता नहीं। अब उस स्वयं (बीजी पुरुष) का तथा जिन पितरों का पिण्डभाग जिस उत्तरवर्ती सन्तान में गया है वह सन्तान उनकी ऋणी है। अतः तत्-परिहारार्थ पिण्डदान करना व श्राद्ध करना उस सन्तान का कर्तव्य हो जाता है। श्राद्धक्रिया द्वारा जो पितरों के आप्यायनार्थ पितरों को पिण्डदान दिया जाता है वह पिण्ड अन्नमय होता है और उन पिण्डों का आधान पितरों को होता है। इसी अन्नमय पिण्ड के द्वारा श्राद्धकर्ता पुरुष का अपने ६ पितरों से सम्बन्ध रहता है। इस अन्नमय पिण्ड द्वारा वर्तमान सापिण्ड्य सम्बन्ध ही पितरों में आधेय सापिण्ड्य कहलाता है। यह श्राद्धकर्ता पुरुष जिन ६ पितरों को पिण्डदान करता है और उस पिण्ड द्वारा अपना सम्बन्ध उनसे रखता है, उन पितरों में ३ पिण्डभागी पितर हैं तथा ३ लेपभागी हैं। जिनका अधिक भाग बीजीपुरुष में है वे पिण्डभागी हैं तथा जिनका न्यून है वे लेपभागी हैं। अधिक भाग पिता, पितामह व प्रपितामह का है अतः वे पिण्डभागी हैं, तथा वृद्धप्रपितामह, अतिवृद्धप्रपितामह तथा परमातिवृद्धप्रपितामह का न्यून है अतः वे लेपभागी हैं। इसी लिये श्राद्ध में पित्रादि तीन को ही पिण्डदान दिया जाता है, शेष को नहीं।

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां, सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥

यह वचन भी इसी तथ्य को प्रमाणित कर रहा है।

४—उत्तर-सापिण्ड्य—

देहत्याग के बाद बीजीपुरुष पितरों को उनका बचा हुआ भाग भी लौटा देता है। और इस तरह अपनी वर्तमान २८ कलाओं में से सात कलाओं द्वारा अपने शरीर को धारण करता हुआ ६ पित्र्यकलाओं को पिता को दे कर पिता से, ५ पितामहीय कलाओं को पितामह को दे कर पितामह से, ४ प्रपितामहीय कलाओं का प्रपितामह में प्रत्यर्पण कर प्रपितामह से, ३ वृद्धप्रपितामहीय कलाओं का वृद्धप्रपितामह में प्रत्यर्पण कर वृद्धप्रपितामह से, २ अतिवृद्धप्रपितामह की कलाओं का अतिवृद्धप्रपितामह में प्रत्याधान कर अतिवृद्धप्रपितामह से, १ परमातिवृद्धप्रपितामह की कला को परमातिवृद्धप्रपितामह को वापिस देकर उससे अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इस तरह उन २१ कलाओं के प्रत्यर्पण द्वारा उसका अपने ६ पितरों से जो एक प्रकार का सम्बन्ध होता है वह प्रत्यर्पणसापिण्ड्य कहलाता है। यह सापिण्ड्य भी सात पुरुषों में होने से साप्तपौरुष है।

इस तरह पित्रादि से प्राप्त कलाओं का उनमें प्रत्यर्पण होजाता है। और पुत्रादि में आधान के द्वारा विच्छिन्न कलाओं का पुनः अपने मूलपिण्ड के साथ एकीकरण हो जाता है इसी आशय से यह सापिण्ड्य कहलाता है।

वस्तुतः कलाओं का पित्रादि में प्रत्यर्पण करने के बाद उनके किसी भाग का उसमें शेष न रह जाने से उसका पितरों से सम्बन्ध अब हट जाता है।

उपर्युक्त रीति से चार प्रकार का सापिण्ड्य है और यह चारों ही प्रकार का सापिण्ड्य आशौचसंक्रान्ति में कारण पड़ता है अतः उसका यहां कुछ विस्तार के साथ निरूपण कर दिया गया है।

इन ४ प्रकार के सापिण्ड्य की मूल कलाओं, आत्मनिवेश्य कलाओं व पुत्रादि में निवाप्य कलाओं का स्पष्टीकरण करने के लिए नीचे यह परिलेख दिया जाता है।

सप्तकोशचक्र

	मूलकला		आत्मनिवेयकला		निवाप्यकला
परमातिवृद्धप्रपितामहकला	१	—	१	=	०
अतिवृद्धप्रपितामहकला	३	—	२	=	१
वृद्धप्रपितामहकला	६	—	३	=	३
प्रपितामहकला	१०	—	४	=	६
पितामहकला	१५	—	५	=	१०
पितृकला	२१	—	६	=	१५
स्वकला	२८	—	७	=	२१
सप्तकोशकलायोग	८४		२८		५६

दायसापिण्ड्य ।

दायसापिण्ड्य में प्रथमतः दायके अधिकारी चार पुरुष होते हैं। १-स्व, २-पुत्र, ३-पितामह तथा ४-प्रपितामह। इन चारों के पुत्र पौत्र व प्रपौत्र भी दायके अधिकारी होते हैं। अतः इन चारों का एक एक वर्ग बन जाता है और इस तरह स्ववर्ग, पितृवर्ग, पितामह-वर्ग, और प्रपितामह वर्ग ये चार वर्ग दायविभाग में बन जाते हैं। प्रत्येक वर्ग में चार व्यक्ति होते हैं—जैसे स्ववर्ग में—१-स्व, २-स्वपुत्र, ३-स्वपौत्र, व ४-स्वप्रपौत्र। पितृवर्ग में १-पिता २-पितृपुत्र, ३-पितृपौत्र, व ४-पितृप्रपौत्र। पितामहवर्ग में- १-पितामह, २-पितामहपुत्र, ३-पितामहपौत्र, व ४-पितामह प्रपौत्र। प्रपितामहवर्ग में— १-प्रपितामह, २-प्रपितामहपुत्र. ३-प्रपितामहपौत्र, ४-प्रपितामहप्रपौत्र। इस तरह मिलाकर १६ पुरुष दाय के अधिकारी हैं तो भी यह १६ व्यक्ति वंशक्रम के अनुसार सात पुरुषों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। जैसे प्रपितामह प्रथम पुरुष, पितामह व प्रपितामहपुत्र द्वितीय पुरुष, पिता, पितामहपुत्र व प्रपिता-महपौत्र तृतीय पुरुष, स्व (कूटस्थ) पितृपुत्र, पितामहपौत्र, प्रपितामहप्रपौत्र चतुर्थ पुरुष, स्वपुत्र, पितृपौत्र व पितामहप्रपौत्र पञ्चम पुरुष, स्वपौत्र व पितृप्रपौत्र षष्ठ पुरुष तथा स्वप्रपौत्र सप्तम पुरुष। इस तरह प्रपितामह कक्षा, पितामह कक्षा, पितृकक्षा, स्वकक्षा, पुत्रकक्षा, पौत्र-कक्षा व प्रपौत्र-कक्षा को लेकर सात ही कक्षा (पीढी) बन जाती हैं। इसलिए—दायसा-पिण्ड्य भी सापिण्ड्य है, और सापिण्ड्य सम्बन्ध 'सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्' इस वचन के अनुसार सात पुरुष तक ही होना चाहिए, इससे अधिक १६ पुरुषों में कैसे है ? यह शङ्का नहीं करनी चाहिये। क्योंकि उपर्युक्त रीति से दायसापिण्ड्य का १६ पुरुषों से सम्बन्ध होने पर भी उन का सात कक्षाओं में अन्तर्भाव हो जाता है और यहां कक्षाओं को लेकर सापिण्ड्य के साप्तपौरुष सिद्धान्त की उपपत्ति हो जाती है।

उपर्युक्त १६ पुरुषात्मक व सप्तकक्षात्मक दायाधिकारी पुरुष स्ववर्ग, पितृवर्ग, पितामहवर्ग व प्रपितामहवर्ग भेद से चार भागों में विभक्त हैं, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इनमें सबसे प्रथम दायके अधिकारी स्ववर्ग के पुरुष होते हैं तदनन्तर क्रमशः पितृवर्ग, पितामहवर्ग व प्रपितामहवर्ग के पुरुष होते हैं। प्रतिवर्ग में भी सर्वतः प्रथम वर्गारम्भक पुरुष का, तदनन्तर पुत्र का, उसके बाद पौत्रका और सबसे अन्त में प्रपौत्रका अधिकार है। इस पूर्वापरभाव का कारण सन्निकर्षतारतम्य है। जिसका अनपत्य व्यक्ति के साथ जितना अधिक निकट सम्पर्क होगा वही सर्वप्रथम उसके दायभाग का अधिकारी होगा। 'यस्यासन्नतरस्तेषां सोऽनपत्यधनं हरेत्' यह वचन भी इसी सिद्धान्त को प्रमाणित करता है। दायसापिण्ड्य का यही रहस्य है।

संक्षेप से इस भूमिका में आशौच से सम्बन्ध रखने वाले कुछ मौलिक सिद्धान्तों व प्रकरणों का निरूपण पाठकों की सुविधा के लिए कर दिया गया है। शेष प्रकरण केवल भिन्न भिन्न विशेष आशौचों के प्रतिपादक हैं व स्पष्ट हैं अतः उनको यहां छोड़ दिया गया है। मूल पुस्तक के अध्ययनमात्र से उनका स्पष्ट ज्ञान हो सकता है। आशा है पाठक महानुभाव आशौचविषयक इस अपूर्व सरल व सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका अध्ययन करके धर्मविषयक व विशेषतः आशौचविषयक भ्रान्ति को दूर करने में समर्थ हो सकेंगे। ॐ इति शम् ॐ

सुरजनदास स्वामी
श्री दादू महाविद्यालय
मोती डूंगरी, जयपुर।

ति० पौष शुक्ला द्वितीया सं०२००८
ता० ३०-१२-५१

॥ श्रीः ॥

विषयसूची



अध्याय-संख्या	अधिकार-संख्या	विषयाः	पृष्ठ-संख्या
	[३]	विवाहादौ भोजने	८४
	[४]	भोजनमध्ये आशौचप्राप्तौ	८४
	४—मृतदोषाधिकारः		८४
		(अपमृत्युमरणादौ पातकिमरणादौ चाशौचाभावः)	८४
	५—वचनाधिकारः		८६
	[१]	वेदाग्निमदादिब्राह्मणादीनां वचनादाशौचाभावः	८६
	[२]	कर्मविशेषेष्वेवायमपवादो न सर्वत्र	८६
	[३]	नाडीच्छेदात्प्राक् प्रतिग्रहादिकम्	८७
	[४]	आशौचान्तरे सत्यपि पिण्डदानम्	८७
१०		**प्रमाणसङ्ग्रहाध्यायः—**	८८
	१—स्मृतिसङ्ग्रहः		८८
	[१]	मनुस्मृतिः	८८
	[२]	मनुस्मृतौ क्षेपकवचनानि	९२
	[३]	अथ याज्ञवल्क्यस्मृतिः	९४
	[४]	अथ पराशरस्मृतिः	९६
	[५]	अथ बृहत्पराशरस्मृतिः	९८
	[६]	अथ गौतमस्मृतिः	१०३
	[७]	अथ वसिष्ठस्मृतिः	१०३
	[८]	अथ दक्षस्मृतिः	१०४
	[९]	अथ शङ्खस्मृतिः	१०६
	[१०]	अथ लिखितस्मृतिः	१०८
	[११]	अथ अत्रिस्मृतिः	१०८
	[१२]	अथ यमस्मृतिः	११०
	[१३]	अथ संवर्तस्मृतिः	११०
	[१४]	अथ लघ्वत्रिस्मृतिः	१११
	[१५]	अथ वृद्धात्रिस्मृतिः	१११

अध्याय-संख्या	अधिकार-संख्या	विषयाः	पृष्ठ-संख्या
	[१६]	अथाङ्गिरसस्मृतिः	११२
	[१७]	अथ आपस्तम्बस्मृतिः	११२
	[१८]	अथ विष्णुस्मृतिः	११२
	[१९]	अथ औशनसस्मृतिः	११४
	[२०]	अथ कात्यायनस्मृतिः	११८
११—		अथ वचनसङ्ग्रहाधिकारः	११९
	[१]	नानामुनिवचनानि	११९
	[२]	पुराणवचनानि	१२०
	[३]	निबन्धनामोल्लेखः	१

॥ श्रीः ॥

शुद्धिसिद्धान्तपञ्जिकायाम्—

* आशौचपञ्जिका *



१—श्रीमच्छिववकुमारस्य पादमूलं जगद्गुरोः ।
विज्ञानभाण्डागारस्य दीपं स्वान्ते सदा दधे ॥१॥
विद्यावाचस्पतिः श्रीमान् *महार्घ्यमधुसूदनः ।
समीक्षाचक्रवर्तीमां करोत्याशौचपञ्जिकाम् ॥२॥
सन्ति यद्यपि भूयांसो निबन्धाः किन्तु तेऽखिलाः ।
स्मृतिव्याख्योच्छलत्तर्कजटिला दुर्गमाशयाः ॥३॥
तर्कैर्निर्णीतमर्थं ये जिघृक्षन्ति, पृथक् कृतम् ।
येऽज्ञसा प्रतिपित्सन्ते तेषामर्थेऽयमुद्यमः ॥४॥
निर्मथ्य धर्मशास्त्राणि विमृश्य विमतानि च ।
तत्सारभूतः सिद्धान्तः सिद्धवत् त्विह दर्श्यते ॥५॥
अत्राध्यायाः परीभाषा सूत्रं जन्म मृतिः क्रिया ।
दोषः पातोऽतीतकालोऽपवादो वाक्यसंग्रहः ॥६॥

—————

१—अथ परिभाषाध्यायः ।

१—शास्त्रसंग्रहः ।

२—अत्र ग्रन्थेऽध्यायाः । अध्याये चाधिकाराः । अधिकारे सिद्धान्ताः । सिद्धान्ते च तत्प्रत्यंशवचनिकाः—इत्येवं विषयपरिच्छेदा भवन्ति ॥ तत्राध्याया दश (१०) अधिकाराश्चतुः षष्टिः (६४) । सिद्धान्तास्तु त्रिसप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३७३) ॥

---

* महार्घ्येति 'मँहगू' इति भाषायाम् । एतेषां जन्मकाले अतीव महार्घता जाता । अतः पितरौ 'मँहगू' इति शब्देन एतान् व्यवहरतः स्म ।

३ – तत्र प्रथमे परिभाषाध्याये ऽशौचसम्बन्धिनो विज्ञातव्याः पारिभाषिकाः कतिचिदर्थाः पृथक्कृत्य प्रदर्शिताः॥१॥ द्वितीये सूत्राध्याये त्वाशौचप्रभवस्थानसंक्रमणद्वारादिभिरर्थजातैराशौचरहस्यमुपपादितम्॥२॥ तृतीये जन्माध्याये जन्माशौचविचारः ॥३॥ चतुर्थे मरणाध्याये मरणाशौचविचारः॥४॥पञ्चमे क्रियाध्याये शवानुगमनाद्यौर्ध्वदेहिकक्रियानिमित्तकाशौचविचारः ॥ ५ ॥ षष्ठे-दोषाध्याये साधारणमालिन्यरूपाशौचोत्पादकाः केचन दोषा आख्याताः॥६॥सप्तमे पाताध्याये आशौचसङ्करविचारः ॥७॥ अष्टमेऽतीतकालाध्याये आशौचमुख्यकालोल्लङ्घनादतिक्रान्तकालाशौचानि विदेशस्थमरणादिनिमित्तकानि दर्शितानि ॥ ८ ॥ नवमेऽपवादाध्याये आशौचोत्पत्तिप्रतिबन्धकस्थानान्युपदर्शितानि ॥ ९ ॥ दशमे तु वाक्यसंग्रहाध्याये आशौचविषयकाणि सर्वाण्यार्षप्रमाणवचनानि संगृह्य दर्शितानि । एव यद्यद्ग्रन्थोल्लिखिततर्कप्रयोगविनिर्णीता आशौचसिद्धान्ता इह पञ्जिकायामुपनिबद्धास्तेषां ग्रन्थानां नामानि चेह प्रकाशितानि ॥१०॥ तदित्थं दशभिरध्यायैः सर्वे समीक्षिता आशौचविषयाः ॥

४—अथास्मिन् परिभाषाध्याये—शास्त्रसंग्रहः, प्रतिज्ञा, आशौचस्वरूपम्, आशौचविशेषाः, निशेषाश्रयाः, स्पर्शास्पर्शव्यवस्था, कर्तव्याकर्तव्यव्यवस्था, आरम्भहेतवः, आरम्भकालः, निवृत्तिहेतवः, शुद्धिसौरम्, इत्येकादशाधिकाराः प्रदर्श्यन्ते इति शास्त्रसंग्रहाधिकारः ॥ १ ॥

२—प्रतिज्ञा ।

(शुद्धि-संस्कारादिस्वरूपम्)

५—प्रतिशरीरमात्मानस्त्रयो भवन्ति–शरीरात्मा, अन्तरात्मा, विशुद्धात्मा चेति ॥ तत्रैतं शरीरात्मानमधिकृत्य दोषांस्ततो निवर्तयितुं गुणांस्तत्राधातुं चेदमायुर्वेदशास्त्रं यथा प्रवर्तते, तथैवेदं धर्मशास्त्रं तमन्यं सत्त्वाख्यमन्तरात्मानमधिकृत्य दोषांस्ततो निवर्तयितुं गुणांश्च तत्राधातुमविशेषात् प्रवर्तते । अन्तरात्मशरीरात्मनोरन्योन्यं घनिष्ठसंबन्धादेकत्र विकारप्राप्तौ परत्रापि विकारोपसंक्रमणादायुर्वेदशास्त्रेऽप्यन्तरात्मनः संस्कारो यथाऽपेक्ष्यते तथैवेह धर्मशास्त्रेऽपि शुद्धिप्रकरणे भूयसाऽस्त्येव शरीरात्मनोऽपि संस्कारापेक्षा । यस्तु पुनरयं तृतीयो विशुद्धात्मा विविच्यते स खलु सर्वेषां मुख्योऽपि विभुत्वादक्रियत्वाच्च न करोति न लिप्यते—इत्यतः स इह धर्मशास्त्रे चायुर्वेदशास्त्रे च नाधिक्रियते । तस्य सर्वगुणोपपन्नत्वाद्दोषशून्यत्वाच्च संस्कारानपेक्षणादित्याहुः ॥

६—अथान्तरात्मनः सत्त्वाख्यस्य संस्कारविधानं धर्मशास्त्रम् । तत्र साक्षादन्तरात्मनः संस्कारस्य कर्तुमशक्यत्वादात्मायतनानां संस्कारेणात्मनः संस्कारः क्रियते स धर्मः अभ्युदयसाधक-

त्वान्निःश्रेयससाधनत्वाच्च । भूतभौतिकविग्रहः, प्राणसमुदायश्चात्मायतनानि । तेषां दोषमार्जनं स्वस्त्ययनं गुणाधानं चेति त्रिविधाः संस्काराः सम्पाद्यन्ते । प्रज्ञापराधनिबन्धना आहारविहारादि-व्यवहारोपनीतद्रव्याणां ये हीनयोगमिथ्यायोगातियोगास्तज्जनिता ये नियमेनात्मायतनेषु सत्त्वे-ऽन्तरात्मनि चाशुभातिशयाः सञ्चीयन्ते, तानि मलानि, ते दोषाः । आत्मायतनानामात्मनश्च प्रसादसिद्धौ तेषां प्रतिबन्धकत्वात् ॥ तत्परिमार्जनं शुद्धिसंस्कारः स च मलानां पाञ्चविध्यात् पञ्चधा विभज्य शास्त्रे निरूप्यते—मलमूत्रादिशारीरशुद्धिः प्रथमा । शय्यासनस्थानवसनभोजन-पात्रादिद्रव्यशुद्धिर्द्वितीया । सापिण्ड्यादिसम्बन्धसूत्रबद्धानां जननमरणादिनिमित्तजनिताघ-शुद्धिस्तृतीया । प्रज्ञापराधनिबन्धनचारित्र्यदोषजनितैनःशुद्धिश्चतुर्थी । रजस्तमोगुणाधिक्यप्रयुक्त-परिदुष्टभावशुद्धिः पञ्चमी । पञ्चभिरेतैः शुद्धिसंस्कारैः प्रहीणदोषरूक्षात्मके शरीरात्मकेऽपि वा क्षेत्रे गुणाधानाय कृतो यत्नः फलवान् भवति, न त्वन्यथा । यज्ञतपोदानैर्विविधैः कर्मभिर्य इह सत्त्वेऽन्तरात्मनि शुभातिशयाः सञ्चीयन्ते, तानि बलानि, ते गुणाः । आत्मायतनानामात्मनश्च प्रसादसिद्धौ तेषां प्रधानोपायत्वात् । तत्पर्याधानं दैवसंस्कारः । स्वस्त्ययनं तु दोषोत्पादकसामर्थ्याः प्रतिबन्धेन स्वस्थस्यात्मनो निरुपद्रवमेकाकारतया स्थापनम् ॥ तत्र दैवसंस्कारः स्वस्त्ययनसंस्कारो वा शुद्धिसंस्कारमन्तरेण नोपयुज्येते—इत्यतः प्रथमं निरूपणीये शुद्धिसंस्कारे शारीरशुद्धि-द्रव्य-शुद्धि-निरूपणानन्तरमिदानीमघशुद्धिर्निरूप्यते ॥ इति प्रतिज्ञाधिकारः ॥ २ ॥

३—आशौचस्वरूपम् ।

७—वेदबोधितचातुर्वर्ण्योचितकर्मफलसिद्धिप्रतिबन्धकोऽमेध्यत्वलक्षणो जननमरणादि-जन्यापूर्वविशेषोऽघमित्याख्यायते । अघभिन्नमलसम्बन्धात् कस्यचिदेकव्यक्तिमात्रस्य देहमात्रं मलिनं भवति । अघात्मकमलसम्बन्धात्तु तत्कुलोत्पन्नानां सर्वेषां देहश्चात्मा चाशुचिर्भवतीति विशेषः । अस्याघस्याशौचसंज्ञा शास्त्रे प्रसिद्धा । अशौचमाशौचं सूतकमघमित्यनर्थान्तरम् । तदपवादः शुद्धिः । तदुपायनिर्देश इह प्रकरणार्थः ।

८—आशौचमित्यशुचेर्भावः कर्म चेत्याहुः । अशुचित्वं चामेध्यत्वं कर्मानधिकारमात्र-मित्याहुः । परे तु आशौचशब्देन कालस्नानाद्यपनोद्यः पिण्डदानोदकदानादिकर्माधिकारनिमित्त-भूतोऽध्ययनादिकर्माधिकारप्रतिबन्धकीभूतः पुरुषगतः कश्चनातिशयः कथ्यते न तु कर्मानधि-कारमात्रम् ; स चातिशयोऽघशब्देन शास्त्रे प्रसिद्धः । वस्तुतस्तु संसर्गसंस्रवादिपरिशीलनाभ्या-सात् संसर्गिपुरुषेष्वप्रतिबन्धं कश्चनातिशयः समुत्पद्यते । सत्यपि समाने संसर्गे योनिविद्याद्य-भिसम्बन्धवत्सु पुरुषेषु सोऽतिशयोऽविलम्बितमुत्पद्यते । संसर्गोपरामप्रायत्वे तु तत् क्रमेण ह्रसित्वा चिरेण सर्वथा निवर्तते । आश्रमविशेषसम्बन्धाच्चित्तवैराग्यात् कारणान्तराद्वा संस्रव-

निवृत्तिनिमित्तसन्निधाने त्वेकहेलयाऽसौ निवर्तते। तस्य चातिशयस्य कालभेदेन त्रैरूप्यं भवति। संसर्गिणि जीवति सत्यन्यथा। मृते किञ्चित्कालपर्यन्तमन्यथा। तदूर्ध्वं पुनरन्यथा। तत्र मध्यमावस्थायां सोऽतिशयोऽघशब्देन संज्ञायतेऽशौचशब्देन च। तस्य तादृगवस्था-निवृत्तिरेव शुद्धिः। तत्कारणोपन्यासश्चेह प्रकरणार्थः॥ इत्याशौचस्वरूपाधिकारः॥ ३॥

४— आशौचविशेषाः।

(आशौचनिमित्तानि, स्पर्शाशौचादिभेदाश्च)

९— प्रधाननिमित्तानुरोधेनाशौचं द्वेधा-जन्माशौचं मरणाशौचं चेति। तयोः क्रमेण सूतकं शावमिति च संज्ञामाहुः। यत्तु मृताशौचेऽपि सूतकशब्दो दक्षादिभिर्व्यवहृतो दृश्यते, तदुभयत्राघस्वरूपस्यैक्याभिप्रायेण निमित्तशब्दभेदानादरादौपचारिकं द्रष्टव्यम्।

१०— परे त्वाहुः जन्ममृत्युक्रियादोषा आशौचे निमित्तानि, तेन निमित्तभेदादाशौचं चतुर्धा-जन्माशौचम्, मरणाशौचम्, उत्तरक्रियाशौचम्, दोषाशौचं चेति। जातकस्य जन्मनि मातापित्रादिसम्बन्धिवर्गे कञ्चित्कालं शुद्धिर्जायते, तज्जन्माशौचम्। एवं मृतकस्य मरणे मातापित्रादिसम्बन्धिवर्गे स्त्रीपुत्रादिसम्बन्धिवर्गे च कञ्चित्कालमशुद्धिर्जायते, तन्मरणाशौचम्। तथा-मृतकस्य मरणे ये केचिदौर्ध्वदेहिकं वाहदाहादिकमुत्तरक्रियाष्टकं कुर्वन्ति, तेषां तत्करणनिमित्तिकाऽशुद्धिः कञ्चित्कालमुपजायते, तदुत्तरक्रियाशौचम्। अथ सन्ति बहवो दोषा मलिनीकरणास्तत्सम्बन्धादप्यशुद्धिर्जायते, तद्दोषाशौचम्।

११—एते च जन्ममृत्युक्रियादोषाः स्वरूपसन्तो निमित्तानि भवन्ति, ज्ञायमानाश्च। तेनाशौचं द्वेधा-स्वरूपसदाशौचम्, वासनाशौचं चेति।

१२—अथाधिष्ठानभेदादाशौचं त्रेधा स्पर्शाशौचम्, कर्माशौचम्, मङ्गलाशौचं चेति। यत्र शरीरस्पर्शो निषिध्यते, तत्स्पर्शाशौचम्। यत्र वैदिकानि कर्माणि निषिध्यन्ते, तत्कर्माशौचम्। यत्र तु विवाहोपनयनकन्यादानादीनि मङ्गलकर्माणि गयाद्यपूर्वतीर्थयात्रादीनि च निषिध्यन्ते, तन्मङ्गलाशौचम्। तत्राद्यं संस्कारात्मकमपूर्वं जायमानमिह भूतात्माधिष्ठितबहिःशरीरे समवतिष्ठत इत्यतः शरीराशौचमङ्गाशौचं च कथ्यते। शरीरस्पर्शे सति इदं परशरीरे संक्रमते, तस्मात्स्पर्शप्रतिषेधलक्षणं स्पर्शाशौचं च कथ्यते। अथ द्वितीयं तद्रूपं जायमानमिह क्षेत्रज्ञात्माधिष्ठितान्तःशरीरे समवतिष्ठते इत्यतस्तदात्माशौचं प्राणाशौचं च कथ्यते। तत्र सति स्वाध्यायो दानप्रतिग्रहौ देवकर्माणि प्रेतपिण्डक्रियावर्जं पितृकर्माणि च प्रतिषिध्यन्ते, अतः श्रौतस्मार्तकर्मप्रतिषेधकलक्षणं कर्माशौचं च कथ्यते। धर्मशरीरे तस्याघस्यानवस्थानात्।

अथ तृतीयमाभ्युदयिकमङ्गलकर्मप्रतिषेधलक्षणं तदशौचमस्तिमात्रसापिण्ड्यवति पुत्रे सत्वमात्राधिष्ठितमनुशयरूपं भवतीत्यतस्तदनुशयाशौचं प्रेताशौचं च कथ्यते। सपिण्डीकरणोत्तरं प्रेतत्वं विमुच्यते । तच्च संवत्सरान्ते विहितमतस्तद्वर्षाशौचं च कथ्यते इत्याशौचविशेषाः ॥ ४ ॥

५—विशेषाश्रयाः ।

(कस्य कस्य संबन्धिनः कुत्र कुत्र कीदृशमाशौचम्)

१३—जन्मनि सूत्यां सूतीसपत्न्यां सूतीभर्तरि च स्पर्शाशौचं कर्माशौचं चोत्पद्यते। इतरेषां सपिण्डानान्तु कर्माशौचमात्रं न स्पर्शाशौचम्। अथ संसर्गिणि स्पर्शाशौचमात्रं न तु कर्माशौचम्, तृतीयाशौचं तु जन्मनि कस्यापि नास्ति। मरणे तु पुत्रे त्रिविधमशौचमुत्पद्यते। सपिण्डादौ तु द्विविधम्—स्पर्शाशौचं कर्माशौचं च। संसर्गिणि त्वेकं स्पर्शाशौचमात्रं न तु कर्माशौचम् ॥ निर्हारायुत्तरक्रियायां स्पर्शाशौचं कर्माशौचं चेति द्विविधाशौचसम्बन्धः। दोषविशेषाभिधाने तु कर्माशौचमात्रं न स्पर्शाशौचं तृतीयाशौचं वा। तदित्थं जन्ममृत्युक्रियादोषनिबन्धनेष्वाशौचेषु स्पर्शकर्मोत्सवप्रतिषेधलक्षणान्युपदर्शितानि। इत्याशौचविशेषाश्रयविचारः॥५॥

६—स्पर्शास्पर्शव्यवस्था ।

(अशौचे कस्य कियन्तं कालमस्पृश्यत्वम्)

१४—कर्माशौचं कर्मप्रतिषेधलक्षणमधिककालेनापैति, स्पर्शाशौचं त्वस्पृश्यत्वलक्षणमल्पकालेन। तत्रासति विशेषाभिधाने कर्माशौचं यत्र यावदुक्तम्, तस्य प्रथमे तृतीयांशे स्पर्शाशौचमपि मातरि पितरि भ्रातरि तदन्येषु च सपिण्डेषु यथायथं समुन्नीयते। यथा मासे कर्माशौचे दशाहं स्पर्शाशौचम्, दशाहे तु कर्माशौचे त्र्यहं स्पर्शाशौचम्। त्र्यहे कर्माशौचे त्वेकाहं स्पर्शाशौचम्। ततो न्यूने कर्माशौचे स्नानात्प्राक् स्पर्शाशौचम्—इत्येवं तारतम्येन सर्वत्रोह्यम्। अयमेव च तृतीयांशः सति सम्भवे अस्थिसञ्चयनकालो भवति। अत एवास्थिसञ्चयनदिने सर्वस्यास्पृश्यता निवर्तते। स च पूर्णाशौचेऽस्थिसञ्चयनकालो ब्राह्मणस्य चतुर्थाहः। क्षत्रियस्य पञ्चमाहः। वैश्यस्य षष्ठाहः। शूद्रस्य दशमाहः। त्र्यहाशौचे तु सर्वेषां द्वितीयाहः। अन्यत्राप्येवं सर्वत्रासति विशेषाभिधाने कर्माशौचत्रिभागकालेनास्पृश्यतानिवृत्तिरित्याह देवल ऋषिः। अतिक्रान्ताशौचे तु सचैलस्नानमात्रेणास्पृश्यतानिवृत्तिः। इति मरणाशौचविषयकः स्पर्शास्पर्शकालः॥ ६ ॥

१५—जननाशौचे तु पुत्रजनने कन्याजनने वा शारीराशौचमस्पृश्यत्वलक्षणमेकस्याः सूतिकाया एव सम्पूर्णं दशरात्रकालापनेयं भवति। अथ पितुर्विमातृणां च तदस्पृश्यत्वं पुत्रजनने स्नानमात्रापनेयं भवति। कन्याजनने तु पितुर्विमातृणां च तावन्मात्रमपि नास्ति। मातापितृभिन्नानां तु सपिण्डानां पुत्रजनने कन्याजनने वा कुत्राप्यस्पृश्यत्वं नास्ति ॥ २ ॥

१६—सूतिकास्पर्शे तु कृते स्पर्शनिमित्तकमस्पृश्यत्वप्रयोजकमघमनुवर्तते। तच्च सूतिकाभर्त्रादि दशरात्रकालापनेयम्। सपिण्डादिषु तु स्नानमात्रापनेयमिति विशेषः॥ इति स्पर्शास्पर्शविचारः ॥ ६ ॥

७—कर्तव्याकर्तव्यव्यवस्था ।

(आशौचे किं किं न कार्यम्)

१७—मरणाशौचे जननाशौचे वा सन्ध्योपासनं पञ्चमहायज्ञान् षट्कर्माणि च वर्जयेत्। तत्राचमनम् प्राणायामः आचमनम् मार्जनम् आचमनम् सूर्यार्घ्यदानम् सूर्योपस्थानम् गायत्रीजपश्चेत्येतानि सन्ध्यावन्दनस्वरूपसम्पादकान्यष्टौ कर्माणि गृहस्थानां नित्यानि। तानि च सर्वाण्यप्याशौचकालमध्ये प्रतिषिद्धानि। *पञ्चैव महायज्ञाः—भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥
श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात् पित्र्यो बलिरथापि वा॥

इति पञ्चमहायज्ञा गृहस्थानां नित्याः। तेऽप्याशौचकालमध्ये प्रतिषिद्धाः। यजनं याजनमध्यापनमध्ययनं दानं प्रतिग्रहश्चेत्येतानि षट्कर्माणि गृहस्थानां नित्यानि। तान्यपि सर्वाण्याशौचकालमध्ये प्रतिषिद्धानि—इत्येके।

१८—परे त्वाहुः। आशौचे सति सन्ध्योपासनार्थमाचमनं सूर्योपस्थानं च न कुर्यात् ५। प्राणायामं तु न कुर्याद्वा, विना मन्त्रेण कुर्याद्वा। मार्जनं गायत्रीजपं च न कुर्याद्वा मानसमन्त्रेण कुर्याद्वा। सूर्यार्घ्यदानं तु गायत्रीं सम्यगुच्चार्य कुर्यादेव, नत्वेव न कुर्यादिति दाक्षिणात्याः। गौडास्तु

* छन्दोगपरिशिष्टे।

सूर्यार्घ्यदानमपि नैव कुर्यादित्याहुः। प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन् नमस्कुर्यात्। सैषा कुशवारि-वर्जिता मानसी सन्ध्या कदाचित् न परित्याज्या—इति सन्ध्यावन्दने विशेषः।

१९—महायज्ञेषु वेदाध्ययनं वेदाध्यापनं च ब्रह्मयज्ञः। तमाशौचे सति नैव कुर्य्यात्।

२०—अथ पिण्डदानमुदकदानं च पितृयज्ञः। पिण्डदानं श्राद्धशब्देनाख्यायते, उदकदानं तु तर्पणशब्देन। तत्राभ्युदयिकश्राद्धं जननाशौचे सत्यपि कुर्यादेव। अथ मृताहमारभ्य दशाह-पर्य्यन्तं दशगात्रश्राद्धम्, तथाद्यश्राद्धमारभ्य सपिण्डीकरणान्तं षोडशश्राद्धं चेत्येतद्द्वयं मरणा-शौचमध्ये कर्तव्यतया नियतत्वादशौचेऽपि कुर्यादेव। सपिण्डीकरणोत्तर हि श्राद्धकर्ता पुत्रादि-रशौचेन विमुच्यते, न ततः प्राक्। त्रिविध हि मातापितृमरणे पुत्राद्याशौचं प्रवर्तते—दशाह-व्याप्यं द्वादशाहव्याप्यं संवत्सरव्याप्यं च। तत्राद्य दशम्या रात्रेरवसाने दशगात्रकर्मावसाने च निवर्तते। द्वितीयं द्वादश्या रात्रेरवसाने सपिण्डीकरणावसाने च। तृतीयं तु चान्द्रसंवत्सरान्ते। अथ सपिण्डज्ञातीनां द्विविधमाशौचं भवति। त्र्यहव्याप्यं दशाहव्याप्यं च। तत्राद्यं तृतीयरात्रे-रवसानेऽस्थिसञ्चयनकर्मावसाने च निवर्तते, द्वितीयन्तु दशम्या रात्रेरवसाने दशगात्रकर्मावसाने चेति। तत्राशौचनिवर्तकानां कर्मणामाशौचे कर्तव्यता नाप्राप्तेति न प्रतिषिध्यन्ते तत्र तानि कर्माणि, किन्तु यद्येषामपि कर्मणां कर्तव्यदिने किञ्चिदशौचान्तरं प्रसज्यते, तदा तदशौचे व्यतीते तच्छ्राद्धं कुर्यात्, नत्वाशौचकालमध्ये—इत्याह ऋष्यशृङ्ग ऋषिः। एवं सांवत्सरिक-श्राद्धदिनेऽप्याशौचप्राप्तौ तदशौचान्तद्वितीयदिने कुर्यात्, न त्वाशौचकालमध्ये। अथाशौचान्त-द्वितीयदिने मलमासादिकालदोषप्राप्तौ विघ्नान्तरप्राप्तौ वा तदुत्तरं प्रथमोपस्थितायां कृष्णैकाद-श्याममावास्यायां वा श्रवणदिवसे वा कुर्य्यादिति लघुहारीतः प्रचेताश्च। अमावास्यादिश्राद्धजातं तु नाशौचे कुर्य्यात्। यद्यावश्यकं स्यात्तदाशौचोत्तरं कृष्णैकादश्यां कार्य्यमिति शिष्टाः॥ इति पितृयज्ञे विशेषः॥

२१—अथ यजनं याजनं च देवयज्ञः। तत्र याजनं सत्याशौचे नैव कुर्यात्। होमस्तु यजनम्। तत्र नियमानियमानुरोधेन व्यवस्था। तथा हि—येषां बह्वृचादीनां दशरात्रमहोमेऽपि नाग्निविच्छेदः कल्पेऽभ्युपगम्यते, तैरशौचे प्राप्तेऽग्निहोत्रहोमो न कार्यः। अशौचोत्तरं तु तत्रैवाग्नौ होमसिद्धिर्न तु पुनराधानाद्यावश्यकता। अथ तैत्तिरीयादीनां चतूरात्रमहूयमानोऽग्नि-र्लौकिकः सम्पद्यते। तस्मात्तेषां होमस्यावश्यकत्वादशौचकालेऽपि शुष्कान्नेन फलादिना वा ब्राह्म-णद्वारा होमं कारयेत्। एवं स्मार्तहोमेऽपि कर्तव्यतया नियते सत्याशौचप्राप्तौ स्वयमकृत्वा पर-द्वारेणाकृतान्नं कृताकृतान्नं वा हावयेत्। कृतान्नं तु परद्वारापि न हावयेत्। ओदनसक्तुलाजमो-दकलड्डुकादीनि कृतान्नानि। तण्डुलमाषमुद्गादीनि कृताकृतान्नानि, व्रीहियवगोधूमादीनि त्वकृ-

तान्नि। स्मार्तं वैधस्नानं नित्यदेवार्चनं च यजनम्। तदाशौचे न कुर्यात्। आगमोक्तं काम्य-पूजनानुष्ठानादिकं निष्कामपूजनादिकं च यजनमुच्यते, तत्रापि काम्ये संकल्प्य प्रवृत्ते यद्याशौची स्यात् तदा मानस्या प्रक्रियया ध्यानयोगेन तत्कुर्यात्, न मन्त्रमुच्चारयेत्। निष्कामनियमे त्वाशौचेऽपि तत्कार्यम्। नियमाभावे त्वाशौचे तदुभयं न कुर्यात्। आशौचे निवृत्ते सति पुनः कुर्यादिति देवयज्ञे विशेषः ॥

२२—अथ दानं प्रतिग्रहश्चेत्युभयं भूतयज्ञः। दीयमानं द्रव्यं बलिशब्देनाख्यायते। तद्दानं तद्ग्रहणं च भूतयज्ञः। तत्र पुत्रजन्मनि नाडीच्छेदात् पूर्वं हिरण्य-भूमि-चतुष्पद-धान्य-गुड़-तिल-घृत-वस्त्र-तुरग-रथ-छत्र-छाग-मत्स्य-शयनासन-गृहादिद्रव्याणां दाने वा प्रतिग्रहे वा दातुः प्रतिग्रहीतुश्च दोषो नास्तीति कूर्मब्रह्मपुराणयोः प्रतिज्ञायते। लवणमधुमांसानां पुष्पमूलफलशाकानां काष्ठलोष्टतृणपर्णानां दधिदुग्धघृततैलानामजिनौषधयोः सक्तु-तन्दुलादिशुष्कान्नानामशौचिस्वामिकानामपि तत्स्वाम्यनुमत्या स्वहस्तेन ग्रहणे नास्ति दोषः। अशौचिना वा गृह्यमाणे दातुः प्रतिग्रहीतुर्वा न दोष इति ब्रह्मपुराणम्। यद्यपि बलिरिति वैधं कर्म भवति, तथापीह वैधमवैधं वा सर्वविधं व्याख्यातमविशेषात्। एतदन्यत्तु सर्वो भूतयज्ञः सत्यशौचे प्रतिषिद्धः॥ इति भूतयज्ञे विशेषः॥

२३—अथ गृहे समागतानां भोजनदानाश्रयदानाद्यातिथ्यकरणं मनुष्ययज्ञः। तत्र जनने मरणे चाशौचिनां कुलस्यान्नमशौचकाले न भोक्तव्यम्. अशौचिगृहे कृतभोजनस्याशौचं प्राप्नोतीत्यतस्तन्निषिध्यते। अशौचं ग्रहीतुमिच्छतान्त्वाशौचिकुलान्नभोजनेऽपि दोषो नास्ति। तदित्थं श्रौतेन महायज्ञेन स्मार्तान्यपि षट्कर्माणि व्याख्यातानि ॥

२४—अथ त्रिविधमाशौचं पूर्वमाख्यातं स्पर्शाशौचं, कर्माशौचं, मङ्गलाशौचं चेति। तत्र श्राद्धकर्तुः पुत्रस्य दशरात्रं सपिण्डानां तु त्रिरात्रं स्पर्शाशौचकालः। तत्राशौचिना शुचिना-स्थेयम्। पराङ्गस्पर्शादिकमशुचिस्पर्शस्तैलाभ्यङ्गादिकं च न कार्य्यम्। अथ कर्माशौचं दशरात्रम्। केषांचित्तु त्रिरात्रम्। तत्र—

> तैलाभ्यङ्गे बान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत्।
> तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः॥

इति मार्कण्डेयपुराणोक्तं कार्यम्। "मत्स्यमांसादि न भक्षयेयुराप्रदानाद्" इति भगवान् गौतमः प्राह। अयं च मांसादिभक्षणनिषेधोऽशौचाभ्यन्तरेऽशौचिमात्रसाधारणः॥ अथ तृतीयमाशौचं संवत्सरेणापैतीति संवत्सरपर्यन्तं पुत्रो विवाहोपनयनकन्यादानादीनि मङ्गलकर्माणि तीर्थयात्रां गयाश्राद्धं च न कुर्यात्। इति कर्तव्याकर्तव्यविचारः॥ ७॥

८—आशौचारम्भहेतवः ।

१५—जन्माशौचं जन्मकालात्, नालच्छेदकालात्, जन्मश्रवणकालाद्वा प्रवर्तते। तत्र जननस्याशौचे निमित्तत्वाज्जन्मकालादारभ्याशौचप्रवृत्तिरिति दाक्षिणात्याः। नालच्छेदस्यैवाशौचे निमित्तत्वात्तदूर्ध्वमेवाशौचप्रवृत्तिर्न तु पूर्वमिति गौडाः। नालच्छेदो नाडीच्छेदो नाभिच्छेदः—इत्येकार्थाः ॥ १ ॥

१६—मरणाशौचं तु मृत्युकालात्, दाहकालात्, मृत्युश्रवणकालाद्वा प्रवर्तते। तत्रानाहिताग्नेर्मृत्युकालादारभ्याशौचदिनगणना कार्या, न तु दाहादारभ्य। तेषां मरणस्याशौचे निमित्तत्वात्। आहिताग्नेस्तु दाहकालादारभ्य दिनगणना कार्या, न तु मृत्युकालात्। तेषां दाहस्याशौचे निमित्तत्वात्। इष्टिमतामन्त्येष्टिनिमित्ताशौचसम्बन्धेऽपि मृत्युनिमित्ताशौचस्य तत्राप्रवृत्तेः ॥ २ ॥

१७—एतच्च वस्तुसदाशौचप्रवृत्तौ निमित्तमुक्तम्। आशौचनिमित्तकविधिनिषेधव्यवहारप्रवृत्तौ तु जनने मरणे वा श्रवणकालादारभ्यैव गणना भवति, तेन ततः पूर्वं स्पर्शकरणे कर्मकरणे वा न दोषः। ज्ञानस्यैव व्यवहारे निमित्तत्वात् ॥ ३ ॥ इत्याशौचारम्भहेतवः ॥ ८ ॥

९—आशौचारम्भकालः ।

(मध्यरात्र-सूर्योदयादिमतभेदः)

१८—आशौचप्रारम्भकालसम्बन्धेन मतत्रयं स्मर्यते। तथाहि—सूर्योदयात् प्राक्कालपर्यन्तं रात्रौ जनने मरणे दाहे वा पूर्वदिनादारभ्य गणना कार्या, सूर्योदयोत्तरं तूत्तरदिनादारभ्य—इत्येकं मतम् ॥ १ ॥

द्विर्विभक्ताया रात्रेर्निशीथकालपर्यन्तं रात्रौ जनने मरणे दाहे वा पूर्वदिनादारभ्य गणना कार्या, निशीथोत्तरं तूत्तरदिनादारभ्य—इति द्वितीयं मतम् ॥ २ ॥

त्रिविभक्ताया रात्रेः प्रथमभागद्वयपर्यन्तं रात्रौ जनने मरणे दाहे वा पूर्वदिनादारभ्य गणना कार्या, तृतीयभागे तूत्तरदिनादारभ्य—इति तृतीयं मतम् ॥ ३ ॥

१९—तत्र मिथिलादिपौरस्त्यदेशेषु सूर्योदयविभागव्यवस्था। मत्स्यादिपाश्चात्यदेशे निशीथविभागव्यवस्था। महाराष्ट्रादिदाक्षिणात्यदेशेषु तु त्रिभागव्यवस्था। तदित्थं यत्र देशे आचारस्तत्र स तथा कार्यो नान्यत्र देशे ॥ इत्यारम्भकालाधिकारः ॥ ९ ॥

१०—आशौचनिवृत्तिहेतुविचारः ।

(केन केन निमित्तेन आशौचं नास्ति इत्यादि)

३०—ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्य्युपाञ्जनम् ।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धिकर्तॄणि देहिनाम् ॥

इत्येवं द्वादशैते शुद्धिहेतवो विष्ण्वादिभिराम्नायन्ते । तत्र ज्ञानतपसी, अग्निमनसी, कर्मकालौ, वारि चेति सप्ताशौचनिवृत्तिहेतवो द्रष्टव्याः । तत्र तावज्ज्ञानतपोऽग्निमनसां प्रभावादेव तत्तदधिष्ठाने समुत्पद्यमानमिदमाशौचं पात्रभेदान्न्यूनाधिककालेन निवर्तते । तदित्थं स्थितिकालानुरोधेनेदमाशौचं द्वादशधा—अनाशौचम्, सद्यःशौचम्, एकाहः, द्व्यहः, त्र्यहः, चतुरहः, षडहः, दशाहः, द्वादशाहः, पञ्चदशाहः, मासः, मरणान्त चेति । तत्र यः साङ्गं सकल्पं सरहस्यं च सर्वशाखं वेदमर्थतः सम्यग् विजानाति, अग्निमान् क्रियावांश्च भवति, तस्याशौचं नास्ति । १ । राजर्त्विजां दीक्षितानां व्रतिनां सत्रिणां बालानां देशान्तरस्थानां च सद्यः शौचम् । २ । साङ्गवेदाध्यायिनामग्निमतां क्रियावतां च ब्राह्मणानामेकाहः । ३ । अन्येषां च तथाविधानां द्व्यहः । ४ । वेदेनाग्निना क्रियया च यथाकथञ्चिद्धीनानां त्र्यहः । ५ । हीनतराणां चतुरहः । ६ । अब्राह्मणानां तथाविधानां षडहः । ७ । जातिमात्रेण विप्राणां तु दशाहः । ८ । क्षत्रियाणां द्वादशाहः । ९ । वैश्यानां पञ्चदशाहः । १० । शूद्राणां मासः । ११ । अस्नात्वा, अनाचम्य, अजप्त्वा, अदत्त्वा, अहुत्वा तु भुञ्जानानां मरणान्तम् । तथा व्याधितस्य कदर्यस्य सर्वदा ऋणग्रस्तस्य क्रियाहीनस्य मूर्खस्य विशेषतः स्त्रीजितस्य व्यसनासक्तचित्तस्य नित्यशः पराधीनस्य श्रद्धात्यागविहीनस्य च सर्वस्य भस्मान्तं सूतकं भवति । १२ । अत्र विशेषोऽपवादाध्याये वक्ष्यते ॥१॥

३१—अथ यद्यप्यधिष्ठानभेदात् त्रिविधमाशौचमाख्यातम्, तेषामपि तारतम्येन निवृत्तिकाला भवन्ति । तथा हि श्राद्धकर्तुः पुत्रस्य तत्संसर्गिणश्च दशगात्रोत्तरं दशाहान्ते स्पर्शाशौचनिवृत्तिः । सपिण्डीकरणोत्तरं वर्षान्ते द्वादशाहान्ते वा कर्माशौचनिवृत्तिः । वर्षान्ते च मङ्गलाशौचनिवृत्तिः । अथ ज्ञातीनान्तु सपिण्डानां तत्संसर्गिणां चास्थिसञ्चयनोत्तरं त्रिरात्रान्ते स्पर्शाशौचनिवृत्तिः । दशगात्रोत्तरं दशरात्रान्ते कर्माशौचनिवृत्तिः । मङ्गलाशौचं तु तेषां नास्ति ॥२॥ तदित्थं कालः कर्म चेत्युभयमाशौचनिवर्तकं सिद्धम् । तत्र काल एवाशौचनिवृत्तौ मुख्यो हेतुः, कर्म गौणमित्येके । कर्मैव तत्र मुख्यो हेतुः कालो गौण इत्यन्ये । परे त्वाहुः- दशमदिवसे दशगात्रकर्मसमाप्तावपि दशम्या रात्रेरवसानपर्यन्तमशौचं न निवर्तते । येऽपि वा दशगात्रादिकं किमपि कर्म न कुर्वन्ति, तेषामपीदमशौचं स्वे स्वे कालेऽतीते निवर्तते । यथा संवत्सरादूर्ध्वं

मरणश्रवणे कर्मकरणाभावेऽप्यशौचनिवृत्तिं मन्वादयः प्राहुः तस्मात् काल एवाशौचनिवर्तको न तु कर्मकलापः। तस्य फलान्तरोद्देशेन विधानाद् इति। केचित्तु श्राद्धादिशुद्धिकर्मनिवर्तनीय-मशौचान्तरमिच्छन्ति। तेषां तादृशाशौचनिवृत्तौ कर्मैव हेतुर्न कर्मेति विशेषः॥ ३॥

३१—अथाशौचं द्वेधा—वस्तुसदाशौचं वासनाशौचं चेति। तत्र ज्ञाने सत्यसति वा निमित्तवशादुपजायमानमाशौचं यत्र सम्बन्धसूत्रादुत्पद्यते तदाद्यम्। यत्तु निमित्तश्रवणाद-शौचमुपजायते, तद्द्वितीयम्। तत्र वस्तु सदाशौचं स्वे स्वे नियते कालेऽतीते स्वयं निवर्तते। ज्ञायमानं तु वासनाशौचं वस्तुसदाशौचस्थितिकालसन्निकर्षविप्रकर्षानुरोधान्न्यूनाधिकमात्रमु-त्पद्य न्यूनाधिककालेनैव निवर्तते। यथ अन्तर्दशाहे श्रवणे शेषदिवसैर्निवृत्तिः। निर्दशस्य वर्षा-भ्यन्तरं श्रवणे त्रिरात्रान्निवृत्तिः। वर्षादूर्ध्वन्तु श्रवणे स्नानमात्रान्निवृत्तिः इत्येवं सर्वत्रोह्यम्। इत्याशौचनिवृत्तिहेतवः॥ १०॥

११—शुद्धिक्षौरम्।

३३—आशौचोपक्रमदिने क्षौरं कार्यमिति दाक्षिणात्याः। तत्रापि दाहात् प्रागेव श्राद्ध-कर्त्रा, दाहादूर्ध्वन्तु सपिण्डादिभिरित्याहुः। आशौचावसानदिने क्षौरं कार्यमिति गौडाः।

'समाप्य दशमं पिण्डं यथाशास्त्रमुदाहृतम्।
श्मश्रुकेशनखानां च यत् त्याज्यं तज्जहात्यपि॥'

इति ब्रह्मपुराणात्। ''श्मश्रुकेशनखान् वापयेत्त्विलोमशिखावर्जम्'' इति वसिष्ठोक्तेश्च प्रतिवर्णमशौचान्तदिने केशश्मश्रुलोमनखाना यत्त्याज्य तज्जह्यात्। न कक्षोपस्थशिखाः न भ्रुवं न वाक्षिलोमापि वापयेत्। गौरसर्षपकल्केन तिलकल्केन वा शिरःस्नानं करोति, वस्त्रशुद्धिं गृहशुद्धिं च करोतीत्याहुः॥ १॥

३४—अशौचान्तदिने क्षौरकरणे कारणद्वयमाहुः। केशश्मश्रुनखान्याश्रित्य पापं तिष्ठन्ती-त्यनुशयनिवृत्त्यर्थमाशौचनिवृत्तिदिने केशादित्यागः कार्य इत्येकम्। एकोद्दिष्टादि श्राद्धमकेशश्म-श्रुणा शुचिना कर्तव्यमित्याचक्षते। शरीरात्तु रुधिरस्रावे पुरुषोऽशुचिर्भवतीत्यतः श्राद्धदिने श्राद्धतः पूर्वं क्षौरकरणे रुधिरस्रावसम्भवे श्राद्धव्याघातः संभाव्यते। तस्मादशौचान्तद्वितीयदिने कर्तव्यमाद्यश्राद्धं लक्ष्यीकृत्य तत्पूर्वदिने दशमदिवसे क्षौरं विधीयते। एवं कृते सति श्राद्धदिने रुधिरस्रावाभावादशुचित्वं नापद्यते, केशश्मश्रुपरित्यागात् शुचित्वं तूपलभ्यते। तदिदं द्वितीयम्।

३५—'अनुभाविनां च परिवापनम्'' इत्यापस्तम्बोक्तेः पुत्रादीनामेव मुण्डनविधिर्ना-न्येषामित्येके। अनुभाविनः पुत्रादय इत्यभिधानात्। अथ प्रेतादल्पवयस्कानामेव मुण्डनविधिर्ना-

धिकवयस्कानामिति विज्ञानेश्वररत्नाकरादयो दाक्षिणात्याः-अनुभाविनः कनिष्ठा इत्यभिमानात्। अशौचमनुभवतां पुंसां सर्वेषां सर्वाशौचे मुण्डनमिति गौडाः—"अनुभाविनः स्वनिष्ठाशौचाभिमानिनः" इत्यभिमानात्। तत्र देशाचारतो व्यवस्था ॥ ३ ॥

३६—'केशश्मश्रू धारयतामग्र्या भवति सन्ततिः' इत्युक्तेर्गृहाश्रमिणो वृथामुण्डनं न कुर्युरन्यत्र विहाराशौचादिनिमित्तेभ्यः। "नो वक्रेतनखश्मश्रुणा ब्राह्मणेन भवितव्यम्" इत्युक्तेः पञ्चमे दशमे वा दिने नियमेन कर्त्र्या केशकर्तनं कारयितव्यम्। 'पञ्चमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यम्" इति श्रुतिनिर्देशात् "त्रिःपक्षस्य केशश्मश्रुलोमनखान् संहारयेत्' इत्यायुर्वेदाचार्यैर्महर्षिचरकादिभिस्तथोपदेशाच्च। क्षुरेणभद्राकरणं तु मृतके सूतके बन्धमोक्षणे मखदीक्षणे राजनिदेशे तीर्थप्राप्तौ चेत्येवंविधे शास्त्रसिद्धे निमित्ते सत्येव कार्यं नान्यथेति बहवः। इदानीं तु लौकिका यथेच्छं चरन्ति। अस्माकं तु मैथिलानां सम्प्रदाये कृतोपनयनानां कर्त्र्या केशकर्तनं व्यवहारविरुद्धम्। भद्राकरणं तु निमित्तमन्तरेणापि यथेच्छमाचारसिद्धं दृश्यते तत्र देशाचाराद् व्यवस्था ॥ ४ ॥

३७—जननाशौचेऽपि श्मश्रुकर्म कर्तव्यमिति शुद्धितत्त्वादौ स्पष्टम्। इति शुद्धिक्षौराधिकारः ॥ ११ ॥

३८—श्रीक्षेत्रादपि दक्षिणोऽधिमिथिलं यो भैरवादुत्तरः
पूर्वो यः खलु लक्ष्मणाख्यसरितो यो गौतमात् पश्चिमः।
तस्मिन् संवसथेऽग्रहीद् बहुबुधे गाढाभिधे जन्म यः
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम् ॥ १ ॥

इति प्रथमः परिभाषाध्यायः ॥ १ ॥

२-अथ सूत्राध्यायः ।

३६—अस्मिन् द्वितीयेऽशौचसूत्राध्याये । १-अशौचप्रभवः, २-सम्बन्धसूत्रम्, ३-योनिसम्बन्धाः, ४-योनिसम्बन्धभेदाः, ५-विवाहसापिण्ड्यम्, ६-दायसापिण्ड्यम्, ७-आशौचसापिण्ड्यम्, ८-पिण्डरहस्यम्, ९-विद्यादिर्बैज्यसम्बन्धः, १०-प्रेतसंसर्गः ११-खननदाहौ, १२-उदकदानम्, १३-निमित्तसंसर्गः, १४-आशौचतादात्म्यम्- त्येते चतुर्दशाधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ।

१—प्रभव—चिन्ता ।

(अशुचित्वोपपत्तिः)

४० —चत्वारि तावन्निमित्तान्याशौचस्योक्तानि;-जन्म, मृत्युः, क्रिया, दोष इति । तत्र जन्माशौचस्य प्रभवः स्त्रीरजः प्रतिपद्यते । तस्य च रजसो मलत्वादियं रजस्वला स्त्री मलिनी भवति । द्विविधा हि शरीरधातवो भवन्ति-प्रसादभूता मलभूताश्च । तत्र गुर्वादयो द्रवान्ता गुणाः, रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि च द्रव्याणि प्रसादा उक्ताः । ये तु शरीरस्य बाधकराः स्युस्ते मला उच्यन्ते । यथा शरीरच्छिद्रेषूपदेहाः पृथग्जन्मानो बहिर्मुखाः परिपक्वाश्च धातवः, ये चान्येऽपि केचिद्भावाः शरीरे तिष्ठन्तः शरीरस्योपघातायोपपद्यन्ते तान् सर्वान् मलानाचक्षते । अत एवेदमार्तवं मलं व्यवसीयते, पृथग्जन्मत्वाद्बहिर्मुखत्वाच्च । मलानामशुचित्वं त्वात्मानिष्टजनकत्वादुपपद्यते । चेतना च सत्त्वं च शरीराग्निश्चात्मान उच्यन्ते । तत्र तज्जातीयेनात्मना परित्यक्तोऽर्थस्तज्जातीयायात्मने हितो न भवति, तस्मात्तस्य तदात्मसापेक्षमशुचित्वं प्रकल्प्यते । तस्य निःसरणसमये मूत्रपुरीषादिनिःसरणसमयवच्छरीरमशुचि प्रतिपद्यते । तत्काले स्पृष्टशरीरस्य परशरीरे स्वगतधर्मसंक्रामकत्वात् । तस्य शुद्धिः शौचप्रकरणेनाम्नाता ॥ १ ॥

४१—अथैतस्या मलिन्याः शरीरतश्चत्वारि दिनानि यावत् कमले समुचितं पुराणं रजः प्रवर्तते । तच्चातिदुष्टं भवति, दग्धप्रायत्वात्, व्यापन्नप्रायभ्रूणसंकुलत्वाच्च । तत्र असृक्स्थिता भ्रूणकीटा म्रियमाणाः सन्तीत्यतस्तस्या असृजोऽशुचित्वं जायते तत्संसर्गे चायुः प्रज्ञा-तेजो-बलाद्यपहीयते-इत्यतोऽयमन्यो विशिष्टो दोषः । तस्य शुद्धिरप्यन्यत्राम्नाता ॥ २ ॥

४२—अथ स्रावपातयोर्डिम्भादिभावापन्ना रजोभागा आत्मना परित्यक्ता बहिर्निःसरन्ति । तेषामात्मना परित्यक्तत्वादेवात्मानिष्टजनकत्वमशुचित्वं चोपपद्यते । शुक्रशोणितजीवसंयोगे तु कुक्षिगते गर्भसंज्ञा भवति । तस्य स्रावे पाते च जीवो निवर्तते, तस्मादप्यशुचित्वं

प्राप्नोति । किञ्च—शुक्रशोणितजीवसंयोगरूपोऽयं गर्भो नाम काशवदग्निरिवाऽयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठानभूतः पञ्चमहाभूतचेतनासमुदायात्मकत्वात् षड्धातु प्रतिपाद्यते । तस्माच्च षड्धातुसमुदायान्महाभूतविकारः पञ्चत्वं प्राप्य चेतनाधातोरधिष्ठानत्वान्निवर्तते, तेषु भूतविकारेषूपपद्यमानमशुचित्वं सम्बन्धसूत्रोपगमादन्यत्रापि संक्रमते । तदिदमशौचमेतत्प्रकरणार्थः ॥ ३ ॥

४३—अथ प्रसवे रजोमूला मातृगर्भसन्धानकारिणी काचिदेका नाडी छेद्यते । नाडीच्छेदाच्चायं जातकः सूतीशरीराग्निपरित्यक्तः पृथग् भवति । सूती चेयं जातकशरीराग्निपरित्यक्ता भवति । अन्योन्यपरित्याग इयमशुद्धिः सूतिकायां जातके चोत्पद्य सम्बन्धसूत्रेण यावत्सम्बन्धिनि सङ्क्रमते । तदिदमशौचमेतत्प्रकरणार्थः ॥ ४ ॥

४४—तदित्थं जन्माशौच चेतनाधिष्ठानभूतस्य धातुपञ्चकस्य चेतनाधातुतः पृथग्भावोपपादात्सञ्जातो दोषविशेष एवाशौचमित्युच्यते । एतेनैव मरणाशौचमपि व्याख्यातम् । तत्रापि चेतनाधातोः पृथग्भावादधिष्ठानभूते पाञ्चभौतिकेऽस्मिन् शवशरीरे दोषोत्पत्तेस्तुल्यत्वात् । एतदप्यशौचं निष्प्राणाङ्गे शवे सम्भूय सम्बन्धसूत्रेण यावत्सम्बन्धिनि सङ्क्रमते कालेन चापनोद्यते । तदिदमशौचमेतत्प्रकरणार्थः ॥ ५ ॥

४५—एतेनैवोत्तरक्रियानिमित्तमप्याशौचं व्याख्यातम् । शवनिष्ठामेध्यतायाः स्पर्शादिसम्बन्धेनान्यत्र संक्रमणात् ॥ ६ ॥

४६—अथ चेतना, सत्त्व, शरीर चेत्येतत् त्रितयं पुरुष इत्युच्यते । तत्रायं चेतनाधातुः पर आत्मा निर्विकारः सर्वभूतानां निर्विशेषश्च । सत्त्वशरीरयोस्तु विशेषाद्विशेषोपलब्धिः । सत्त्वे च द्वौ दोषौ—रजस्तमश्च । तौ सत्त्वं दूषयतः । तथा च विशुद्धं सत्त्व प्रसादः । तत्सम्बन्धाच्च विशुद्धा चेतनोपलभ्यते स प्रसादः । अथ तमःप्राधान्ये सति सत्त्वमविशुद्धं विदूषितं भवति । तदिदं दूषणमात्मनः शरीरस्य चोपघाताय प्रभवतीत्यतस्तस्य तमसो मलत्वमिष्यते । तन्निबन्धनममेध्यत्वमेव दोषाशौचम् । तद्धि दोषिसत्त्वशरीरस्थं तत्संसर्गिणि च प्रवर्तते । तदिदमप्येतत्प्रकरणार्थः ॥ ७ ॥

४७—तदित्थं निवृत्तचेतना भूतविकाराश्चेतनापकर्षकधर्मत्रानर्थश्चाशौचप्रभव इति सिद्धम् प्रादुर्भावस्थानं प्रभवशब्देनाख्यायते । इति प्रभवविचारः ॥ १ ॥

२—सम्बन्धसूत्रम् ।

(अशुचित्वोपपत्तिः)

४८—व्यक्तिविशेषे कथंचिदुत्पद्यमानमशौचं तत्र व्यक्तौ निभृतमवस्थाय व्यक्त्यन्त-

रेऽपि संक्रमते। तच्च नाविशेषेण सर्वासु मनुष्यव्यक्तिषु यथेच्छं सक्रमते, किन्तु नियतं किञ्चित संक्रमणद्वारमपेक्षते तच्च द्वार चतुर्विधः सम्बन्धः— योनिकृतः, विद्याकृतः, यज्ञकृतः संसर्गकृतश्चेति। एषामन्यतमोपि सम्बन्धो यत्र नोपपद्यते, तत्र व्यक्तौ नेदमघ समासज्जते एतेषामेव चतुर्णां सम्बन्धानामघसंक्रामकत्वनियमात्। एतेषामेव च सम्बन्धानां तारतम्येनाशौचसंक्रमणेऽपि तारतम्यं घटते। अशौचस्यैतन्मूलकत्वात्। तस्मादघस्थितिज्ञानार्थं सम्बन्धसूत्रं याथातथ्येन विजानीयात्। इति सम्बन्धसूत्रविचारः ॥ २ ॥

३—योनिसम्बन्धाः ।

(अशुचित्वोपपत्तिः)

४६—कुतश्चिदेकस्मात् पुरुषादारभ्य प्रवृत्ता सततिपरम्परा गोत्रम्। एतस्मिन् गोत्रे परिदृष्टानामेकशाखानां भिन्नशाखानां वा तत्सम्बन्धिनां वा पुरुषाणां परस्परं यः सम्बन्धः स योनिकृतः। यस्मात् पुरुषाद् गणनामारभ्य यद् गोत्रं निरूपयितुमिष्यते, तत्र गोत्रे स बीजी पुरुषो मूलपुरुषः कूटस्थ इति चोच्यते। तस्मान्मूलपुरुषादारभ्य प्रवृत्तायां संततिपरम्परायां शततमम, सहस्रतमम्, लक्षतमम वा ततोऽप्यूर्द्ध्वतमं यावदुपलम्भ वा पुरुषमभिव्याप्यायं गोत्रव्यवहारः शक्यं कर्तुम्। किन्तु न तेषु सर्वेष्वविशेषेणेदमाशौचमभिसम्बध्यते। मूलपुरुषदेकविंशं पुरुषं यावदेव यथाकथंचिदाशौचाभिसंबन्धस्य नियतत्वात्। तत्रापि नाविशेषेण सर्वत्र समानोऽभिसम्बन्धः, किन्तु यथा यथा मूलपुरुषाद् विप्रकर्षो घटते, तथा तथा तद्द्वारकेऽशौचादिधर्माभिसम्बन्धेऽपि तारतम्यमुपपद्यते। तादृशतारतम्यानुरोधेनैवेदं गोत्रं सप्तसंस्थं कृत्वा विभज्यते तथा हि—

१-त्रिपुरुषं यावत् सन्निहितसपिण्डः स सन्निकृष्टतमः ॥ १ ॥
२-सप्तपुरुषं यावत् सपिण्डः स सन्निकृष्टतरः ॥ २ ॥
३-दशपुरुषं यावत् सकुल्यः स सन्निकृष्टः ॥ ३ ॥
४-चतुर्दशपुरुषं यावत् सोदकः स मध्यमः ॥ ४ ॥
५-सप्तदशपुरुषं यावत् सन्निहितसगोत्रः स विप्रकृष्टः ॥ ३ ॥
६-एकविंशपुरुषं यावत् सगोत्रः स विप्रकृष्टतरः ॥ २ ॥
७-चतुर्विंशं यावत्तदूर्ध्वं च यथेच्छं ज्ञातिः स विप्रकृष्टतमः ॥ १ ॥

इह हि सन्निहितसपिण्डदूरसपिण्डयोः सन्निहितसगोत्रदूरसगोत्रयोश्चाशौचे विशेषो न स्मर्यते। सकुल्यसोदकयोरपि नातितरां विशेषः। तथाप्यन्यत्र धर्म्मप्रकरणे दृश्यते विशेष इतीहापि सुप्रतिपत्त्यर्थमित्थमुपदिष्टाः सप्त संस्थाः।

सप्ताप्येताः संस्थाः मूलपुरुषादेवारभ्यन्ते । यथा हि मूलपुरुषात् त्रिपुरुष सपिण्डास्तथा मूलपुरुषादेवैकविंश यावत् सगोत्राः, न तु चतुर्दशादूर्द्धमेव सगोत्रत्वमास्थीयते । तथाप्या-शौचाभिसम्बन्धतास्तम्यानुरोधेन व्यवहारसौकर्यार्थमेषामुत्तरोत्तर भेदेन व्यवहारः । तेन सप्तमपुरुषादूर्ध्व सकुल्यः । दशमपुरुषादूर्ध्वं सोदकः । तदूर्ध्वं सगोत्र इत्येव नेयम् । जन्म-नाम्नोः स्मरणास्मरणाभ्यामाशौचादिधर्मे विशेषो घटते । इत्यतस्तदनुरोधेन जन्मनामस्मृतिपर्यन्तं सोदकत्वव्यवहारस्तदस्मरणे त्वस्मत्कुलजोऽयमित्येतावन्मात्रज्ञानसत्वे सगोत्रत्वव्यवहार इति मन्वादयः स्मरन्ति ॥

यथाह बृहन्मनुः—सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
समानोदकभावस्तु निवर्तेताचतुर्दशात् ॥
जन्मनाम्नोः स्मृतेरेके तत्परं गोत्रमुच्यते ॥ इति

सप्तमं पुरुषं यावत् सपिण्डाः । चतुर्दशं यावत् सोदकाः । एकविंशं यावत् सगोत्राः ।

इत्येते त्रयो विभागा एवाशौचधर्म्मे विशेषाधायकाः । विशिष्यास्थेयाः । तत्र सपिण्डः सनाभिरित्यनर्थान्तरम् । सगोत्रो गोत्रज इत्यनर्थान्तरम् । तेषामेषां सगोत्र-सोदक-सपिण्डानां यस्य येन यथा सम्बन्धस्तद्विज्ञानार्थं गोत्रमेरुः प्रदश्यते ।

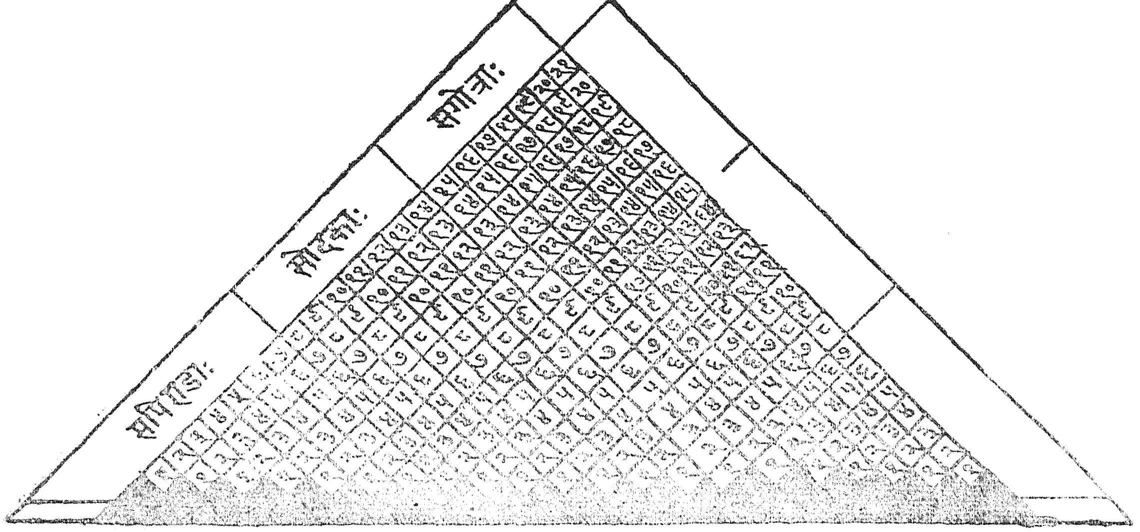
गोत्रमेरुः सगोत्रमेरुश्च ।

इत्थं त्र्यस्रो गोत्रमेरुः, तत्रैकाङ्कोपलक्षितेष्टकाश्रेणिस्त्रिकोणस्य भुज इष्यते । एक-द्व्याद्येकविंशत्यवसानाङ्कोपलक्षितेष्टकामयो वामः स्तम्भः कोटिः । कोटिगताङ्कारब्धो भुजगतै-काङ्कावसानो दक्षिणः स्तम्भः कर्णः । स इह पिण्डकशब्देन व्यपदिश्यते । द्व्यङ्कारब्धकर्णस्त-म्भः, दक्षिणपार्श्वे त्र्यङ्कारब्धकर्णस्तम्भ इत्येवमुत्तरोत्तरमेकैकाङ्कवर्द्धितैः कर्णस्तम्भैः संनिवेशितै-रत्र विंशतिस्त्र्यस्रा अन्तर्भवन्ति । तेषां त्र्यस्राणामुपरितने कोटिकर्णकोणे यः परमोऽङ्कः स मूलपुरुषः । इत्थं कोटिस्तम्भगता य एकविंशतिरङ्कास्ते प्रत्येकत्र्यस्राणां कूटस्थस्य भुजकोटिकोण-स्थैकाङ्कोपलक्षितस्य मूलपुरुषाः स्युः । तदारब्धाः कर्णस्तम्भगताङ्कोपलक्षिताः पुरुषाः साध्याः । यत्प्रतियोगिकः साधिण्ड्यादिसम्बन्धो निरूप्यः स कूटस्थः । यदनुयोगिकः स सम्बन्धः स साध्यः । यथा—

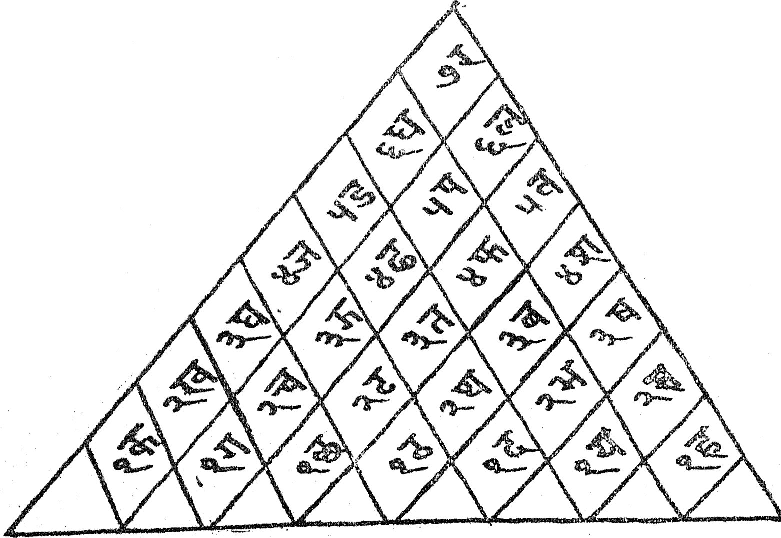
सपिण्डमेरुः । सापिण्ड्यमेरुर्वा ॥

अस्मिन् सपिण्डपर्यवसाने गोत्रमेरौ ककारः कूटस्थः, स प्रथमः पुरुषः । स इह स्वशब्देनोच्यते, तस्य खकारः पिता स द्वितीयः पुरुषः, तदारब्धकर्णस्तम्भगतो गकारो द्वितीय-

गोत्रमेरुः । सगोत्रमेरुश्च



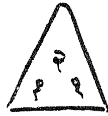
सपिण्डमेरुः । सापिण्ड्यमेरुर्वा ॥



१—उपरितने परिलेखे '९' एतादृशनवमसंख्यास्थाने सर्वत्र '१' एतादृशी एकत्व संख्या प्रत्येतव्या 'सपिण्ड' स्थाने च सपिण्डेति' इबोध्यम् । अधस्तने परिलेखे च 'व' इत्यस्य स्थाने 'ब' इति 'ब' इत्यस्य स्थाने च 'व' इति पाठ्यम् ।

गोत्रमेरु के परिलेख का स्पष्टीकरण

यह त्रिकोण परिलेख है। इस परिलेख में १ अङ्क से चिन्हित ईंटों वाली इस त्रिकोण के नीचे की रेखा की भुज संज्ञा है। १० से २१ अङ्क वाली वामभाग की रेखा की कोटिसंज्ञा है और कोटि के अर्थात् वामभाग की रेखा के ऊपरी भाग से (२१ अङ्कसे) आरम्भ कर भुज तक (१ अङ्क की) दाहिनी रेखा कर्ण कहलाती है। त्रिकोण की कर्णसंज्ञक दक्षिण पार्श्व की रेखा को पिण्डिका भी कहते हैं। इस तरह त्रिकोण के नीचे की रेखा भुज, वामभाग की रेखा कोटि और दक्षिण भाग की रेखा कर्णशब्द से व्यवहृत हुई है। इनमें ऊपर के कोण में अर्थात् कर्णरेखा व कोटिरेखा के संयोजक कोण में जो २१ का अङ्क है उसे यहां मूलपुरुष मानना चाहिये। कोटि अर्थात् वामभाग में वर्तमान द्वितीय अङ्क से प्रारम्भ कर कोटि में ही वर्तमान २१ तक के अङ्क तक प्रत्येक अङ्क से २० त्रिकोण यहां बनते हैं। जैसे वाम भाग का २ अङ्क, भुज का १ अङ्क और कोटि तथा भुज के नीचे के कोने का १ अङ्क इन तीनों को मिलाने से एक त्रिकोण बनता है। इसी तरह कोटि के तीन अङ्क से आरम्भ कर कर्णस्तम्भ व भुजरेखा के कोण में वर्तमान १ अङ्क को द्वितीय कोण बनाता हुआ कोटि व भुज के कोण के १ अङ्क तक दूसरा त्रिकोण बनता



प्रथम त्रिकोण स्वरूप

है। इसी तरह ४-५ आदि से शुरू करके २१ तक २० त्रिकोण बन जाते हैं और वे त्रिकोण उत्तरोत्तर आकृति में भी बढ़ते जाते हैं। यहां तक कि २१ अङ्क से आरम्भ किये हुए त्रिकोण में ऊपर के परिलेख का स्वरूप बनेगा। जिस त्रिकोण का प्रारम्भ ऊपर के कोने के २१ अङ्क से होकर कर्ण के (दक्षिण पार्श्व के) नीचे के कोने के एक अङ्क को तथा कोटि व भुज के एक अङ्क को दूसरे व तीसरे कोण बनाता हुआ वापिस उसी ऊपर के कोण में समाप्त होजाता है। यही ऊपर के परिलेख का स्वरूप है।

इस प्रकार जो २० त्रिकोण बनते हैं उनमें कोटिस्तंभ में वर्तमान अर्थात् कोटि रेखा के २ से लेकर २१ तक के अङ्क अपने से आरब्ध त्रिकोण में भुज व कोटि के कोण में वर्तमान एक अङ्क से उपलक्षित कूटस्थ के मूलपुरुष पड़ते हैं अर्थात् कोटि व भुज रेखाओं के कोण में वर्तमान १ अङ्कोपलक्षित पुरुष कूटस्थ कहलाता है जिसके कि वे कोटिस्तम्भ रेखा में वर्तमान अर्थात् कोटि रेखागत २-३ आदि २१ अङ्क तक के अङ्कों से उपलक्षित पुरुष मूल पुरुष होते हैं। और दक्षिण भाग अर्थात् त्रिकोण के कर्णस्तम्भ भाग में वर्तमान अङ्कों से उपलक्षित पुरुष साध्य कहलाते हैं। इस तरह प्रत्येक त्रिकोण में कोटिस्तम्भ में विद्यमान अङ्क से उपलक्षित पुरुष मूलपुरुष, कोटि व भुज के कोण में वर्तमान १ अङ्क से उपलक्षित पुरुष कूटस्थ तथा कर्णस्तम्भ रेखा के अङ्कों से उपलक्षित पुरुष साध्य कहलाते हैं। कूटस्थ से सापिण्ड्य सम्बन्ध का प्रारम्भ है तथा साध्य में उसका पर्यवसान (समाप्ति) है।

साफिण्ड्यमेरुप्रदर्शक परिलेख का स्पष्टीकरण ।

इस साफिण्ड्यप्रदर्शक परिलेख में भी पहिले की तरह वाम भाग की कोटि संज्ञा दक्षिण भाग की कर्ण संज्ञा व पिण्डिका संज्ञा तथा नीचे की रेखा की भुज संज्ञा है । यहां भी कोटि व भुज के कोण में वर्तमान ककारोपलक्षित पुरुष कूटस्थ है जिससे साफिण्ड्य सम्बन्ध का प्रारम्भ होता है । और पिण्डिका में वर्तमान गकारादि से उपलक्षित पुरुष प्रत्येक त्रिकोण में साध्य कहलाते हैं जिनमें साफिण्ड्य सम्बन्ध का पर्यवसान होता है, और कोटि-स्तम्भ में वर्तमान खकारादि वर्णोपलक्षित पुरुष मूलपुरुष कहलाते हैं ।

यहां भी पहिले की तरह 'ख' वर्ण से प्रारम्भ कर 'र' वर्ण तक ६ त्रिकोण बनेंगे । पहिला त्रिकोण ख से प्रारम्भ कर ग वर्ण को कर्णस्तम्भ 'पिण्डिका' स्थान में रखता हुआ और 'क'को कोटि व भुज के कोण में रखता हुआ वापिस ख में ही समाप्त होता है ।

इस त्रिकोण में 'ख'मूलपुरुष अर्थात् ककार का पिता है उससे आरम्भ होनेवाले कर्णस्तम्भ में वर्तमान 'ग' द्वितीयपिण्डिका में 'ख' पिता के पुत्र ककाररूप कूटस्थ का भ्राता कहलाता है । इसी तरह द्वितीय त्रिकोण 'घ' से प्रारम्भ होकर 'च' व 'छ' को पिण्डिका भाग में 'ग' वर्ण को भुज रेखा में,'क' को कोटि व भुज के कोण में तथा 'ख' को कोटि रेखा में ही रखता हुआ 'घ' में ही समाप्त होता है । इस में 'घ' मूल पुरुष है जो कि 'ख' का पिता है । तृतीय पिण्डिका में वर्तमान चकार खकार का भाई है तथा उसी पिण्डिका में वर्तमान छकार ककार का भाई है । यही क्रम आगे के त्रिकोणों में भी रखना चाहिये । इस तरह भुजरेखा में वर्तमान गकारादि सब भिन्न भिन्न पिण्डिकाओं में ककार के भाई होते हैं । जैसे द्वितीय पिण्डिका में गकार, तृतीय पिण्डिका में छकार, चतुर्थ पिण्डिका में ठकार, पञ्चम पिण्डिका दकार, षष्ठ पिण्डिका में यकार, तथा सप्तम पिण्डिका में हकार उस कूटस्थ ककार का भाई पड़ता है ।

इस तरह कूटस्थ पुरुष का द्वितीय पिण्डिका से आरम्भ कर ७ वीं पिण्डिका तक के ६ पुरुषों से सम्बन्ध है । यहां कूटस्थ व ६ पिण्डिका के ६ पुरुषों को मिलाने से साप्तपौरुष साफिण्ड्य की उपपत्ति हो जाती है । उपर्युक्त ६ पिण्डिकागत पुरुष क्रमशः पिता, पितामह, प्रपितामह, वृद्धप्रपितामह, अतिवृद्धप्रपितामह तथा परमातिवृद्धप्रपितामह हैं । तथा कूटस्थ पुत्रस्थानीय है । इस रीति से इन सातों का परस्पर साफिण्ड्य सम्बन्ध है । इससे आगे ८ वें पुरुष में साफिण्ड्य सम्बन्ध नहीं बन सकता । आगे १४ वें पुरुष तक सोदक तथा इससे भी आगे के पुरुषों में सगोत्र सम्बन्ध होता है । यद्यपि सगोत्रशब्द लाखों पुरुषों तक जा सकता है फिर भी उसका प्रधानतया व्यवहार २१ वीं पीढी तक के पुरुषों में ही होता है, आगे नहीं । यही इस परिलेख का रहस्य है ।

पिण्डिकायां स्वस्य भ्राता । १ । एवं घकारः स्वस्य पितामहस्तृतीयः पुरुषः । तदारब्धकर्णस्तम्भे चकारः स्वस्य पितृभ्राता, छकारस्तु तृतीयपिण्डिकायां स्वभ्राता । २ । एवं जकारश्चतुर्थपुरुषः स्वस्य प्रपितामहः । तदारब्धकर्णस्तम्भे झकारः स्वस्य पितामहभ्राता । टकारः पितृभ्राता । ठकारस्तु चतुर्थपिण्डिकायां स्वभ्राता । ३ । एवं डकारः पञ्चमपुरुषः स्वस्य वृद्धप्रपितामहः । तदारब्धकर्णस्तम्भे दकारः पञ्चमपिण्डिकायां स्वभ्राता । ४ । धकारः षष्ठपुरुषः स्वस्यातिवृद्धप्रपितामहः । तदारब्धकर्णस्तम्भे यकारः षष्ठ्यां पिण्डिकायां स्वभ्राता । ५ । एवं सप्तमपुरुषो रकारो वृद्धातिवृद्धप्रपितामहः, स बीजी पुरुषो मूलपुरुषः कूटस्थो नाभिरिति चोच्यते । तदारब्धकर्णस्तम्भे हकारः सप्तम्यां पिण्डिकायां स्वभ्राता । ६ । एतावदिदं साप्तपौरुषं सापिण्ड्यम् । एवमेवोत्तरोत्तरं सोदकपर्यन्तं सगोत्रपर्यन्तं च व्यवसेयम् । परे तु एकः प्रथमः पिण्डदः पुरुषः तदूर्ध्वं त्रयः पिण्डभाजिनः पुरुषाः, तदूर्ध्वं त्रयः पिण्डलेपभागिनः पुरुषाः. इत्थं साप्तपौरुषं सापिण्ड्यं निरूप्य पिण्डदापेक्षया उपरितनैः षड्भिः पुरुषैरारब्धास्वेव षट्सु पिण्डिकासु प्रथमादिशब्दानुपचरन्ति । तन्मते पितुः पुत्रः, प्रथमपिण्डिकायां स्वभ्राता । १ । पितामहपौत्रो द्वितीयपिण्डिकायां स्वभ्राता । २ । प्रपितामहप्रपौत्रस्तृतीयस्यां भ्राता । ३ । वृद्धप्रपितामहस्य वृद्धप्रपौत्रश्चतुर्थ्यां भ्राता । ४ । अतिवृद्धप्रपितामहस्यातिवृद्धप्रपौत्रः पञ्चम्यां भ्राता । ५ । एवं वृद्धातिवृद्धप्रपितामहस्य वृद्धातिवृद्धप्रपौत्रः षष्ठ्यां भ्राता । ६ । तदित्थं षट्स्वेव पिण्डिकासु पिण्डदस्य सम्बन्धोऽनुवर्तते । सप्तम्यां तु पिण्डिकायां निवृत्तोऽस्य सापिण्ड्यसम्बन्ध इति सिद्धम् ॥ तत्रायं शब्दव्यवहारमात्रे विशेषो न वस्तुतत्त्वे—इत्युपेक्ष्यम् ॥ इति योनिसम्बन्धविचारः ॥ ३ ॥

४—योनिसम्बन्धप्रभेदाः ।

५०—योनिसम्बन्धस्त्रेधा—मुख्य आरोपितस्तृतीयश्चेति । ये खलु कस्मिँश्चिद् गोत्रे समुत्पद्य यावज्जीवनं तस्मिन्नेव गोत्रेऽवतिष्ठन्ते, न तु गोत्रान्तरे नीयन्ते तेषां स्वगोत्रजातैः सह परस्परं यः सम्बन्धः स मुख्यः । तत्र सोदरयोर्भ्रात्रोर्भगिन्योश्चैकशरीरावयवानुगमात्परस्परं यः साक्षात्सम्बन्धः, यो वा पुत्रपौत्रप्रपौत्रादिपूर्वोत्तरक्रमेण परम्परया सम्बन्धः सोऽयमुभयविधोऽपि मुख्यः ॥ अथारोपितः पुनस्त्रेधा—सगोत्रीकरणं, विगोत्रीकरणं, विगोत्रसापिण्ड्यं चेति । परगोत्रे समुत्पन्ना अपि संस्कारद्वारा तद्गोत्रात्प्रच्याव्य च स्वगोत्रे सम्पाद्यन्ते, तेषां स्वेन सगोत्रतां नीतानां स्वगोत्रे यः सम्बन्धः स सगोत्रीकरणः । यथा परकुलादानीतानां पत्नीनां श्वशुरकुलजैः, यथा वा दत्तकपुत्रादीनां प्रतिग्रहीतृकुलजैश्च सम्बन्ध इति । एवं स्वगोत्रे समुत्पन्ना अपि संस्कारद्वारा यत्र स्वगोत्रात् प्रच्याव्य परगोत्रे नीयन्ते, तेषां स्वेन विगोत्रतां नीतानां जनयितृगोत्रजातैः सह यः सम्बन्धः स विगोत्रीकरणः । यथा विवाहितानां दुहितॄणां दत्तकपुत्रादीनां च जनयितृकुलजैः सम्बन्ध इति । अथ ये भिन्नगोत्राः सपिण्डा आत्मबन्धुमातृबन्धुपितृबन्ध्वादयस्तैः सह यः सम्बन्धः स विगोत्रसापिण्ड्याख्यः । केचित्तु पितृमातुलपुत्रादीनां सापिण्ड्यं

नेच्छन्ति । तदेतल्लोकव्यवहारसापेक्षं बोध्यम् । लोके तेषु सापिण्ड्यव्यवहारस्य लुप्तप्रायत्वात् । वस्तुतत्त्वावमर्शे तु तेष्वपि सापिण्ड्यमप्रतिषिद्धम् । अथ तृतीयोऽनेकधा—मुख्यसम्बन्धेन सम्बन्धिनां ये मुख्यसम्बन्धेन सम्बन्धिनो, ये वा तेषामारोपितसम्बन्धेन सम्बन्धिनः, अथवारोपितसम्बन्धेन सम्बन्धिनां ये मुख्यसम्बन्धेन सम्बन्धिनो ये वा तेषामारोपितसम्बन्धेन सम्बन्धिनः, तैरेतैश्चतुर्विधैः सह यः सम्बन्धः स तृतीयः । यथा भ्रातृपुत्रैः, भ्रातृपत्नीभिः, यथा वा जामातृश्वशुरादिभिस्तद्भ्रात्रादिभिश्चेति । एवमेतेष्वपि त्रिविधेषु योनिसम्बन्धेषु प्रत्येकं सन्निकर्षविप्रकर्षाभ्यां तारतम्यादनेके सम्बन्धा उपपद्यन्ते, ते यथायथमूह्याः । सम्भवमात्रेणायं विभागः कल्प्यते । अशौचसम्बन्धस्त्वेषु त्रिविधेष्वपि योनिसम्बन्धेषु भिन्ननियमो दृश्यते—कचिद्दशाहं, कचिद्वा त्र्यहं, तदर्धमेकाहं स्नानमात्रं चेति । तस्मादनुपयुक्तोऽयं विभागः । इति योनिसम्बन्धप्रभेदाः ॥ ४ ॥

विवाहसापिण्ड्यम् ।

४१—पूर्वं गोत्रमेरौ प्रदर्शितास्वेकविंशतिपुरुषारब्धासु पिण्डिकासु त्रिसंस्थः सम्बन्धः सिद्धो भवति । सप्तमं यावत् सापिण्ड्यम्, चतुर्दशं यावत् सोदकत्वम्, एकविंशं यावत् सगोत्रत्वमिति । तत्र सापिण्ड्यसम्बन्धं व्याख्यास्यामः । सापिण्ड्यं त्रेधा—विवाहसापिण्ड्यम्, दायसापिण्ड्यम्, आशौचसापिण्ड्यं च । यद्यपि सापिण्ड्यमेकधैव न त्रेधा सम्भवति । एकपिण्डान्वयस्यैव सापिण्ड्यपदार्थतया पिण्डपदार्थान्वयकर्मणि विवाहादीनामप्रयोजकत्वात्, तदनपेक्षमेवैकपिण्डान्वयवत्सु सर्वेष्वेव पुरुषेषु सापिण्ड्यव्यवहारस्यैकेनैव रूपेण प्रवर्त्तनीयत्वात् । तथापि सपिण्डानां मध्याद् यावतां विवाहे प्रतिषेध्यत्वेनापेक्षा, तदनुगतं सापिण्ड्यं विवाहे निरूप्यते । यावतां तु दायक्रमे दायभागित्वेनापेक्षा, तदनुगतमेव सापिण्ड्यं दाये प्रदर्श्यते । अथ यावतां सपिण्डानां परस्परमशौचभागित्वं प्रतिपद्यते, तावन्मात्रानुगतं सापिण्ड्यमाशौचे निर्दिश्यते । विवाहप्रतिषेध्यत्वं दायभागित्वमशौचभागित्वं च नतरां सर्वेषु सपिण्डेषु समानम् । अतस्तदपेक्षाविशेषानुरोधेनेदं सापिण्ड्यं त्रेधा विभज्य निरूप्यते ।

४२—तत्रादौ विवाहसापिण्ड्यं व्याख्यास्यामः—सगोत्र-विगोत्र-साधारणं हीदं सापिण्ड्यम् । तत्र बीजिनमारभ्य पुत्रपक्षे सप्तमपुरुषमभिव्याप्य, कन्यापक्षे तु पञ्चमपुरुषमभिव्याप्य, सर्वेषां सन्तानानां सन्तानिनां च परस्परं सापिण्ड्यम् । एकस्यापि सप्ताधिकत्वे तेन समं सप्तान्तर्गतस्यापि सापिण्ड्यं निवर्तते,संयोगवत् सापिण्ड्यस्योभयनिरूप्यत्वादिति वाचस्पतिमिश्रकेशवमिश्रामृतनाथादयः स्वीकुर्वन्ति । एतच्च सापिण्ड्यमनेकधा निरूपयन्ति विद्वांसः । तत्र दाक्षिणात्यानां निबन्धे यथेदं विवाहसापिण्ड्यमभ्युपेयते, तथेह प्रदर्शयिष्यामः । तच्चावरं कूटस्थमारभ्योपरितनानां पितृतः सप्तस्थानानां द्वात्रिंशत्पितृद्वन्द्वानां प्रत्येकस्य सप्तस्थानान्येवापत्यद्वन्द्वानि

त्रिषष्टिमितानि, तथा मातृतः पञ्चस्थानानां सप्तानां पितृद्वन्द्वानां प्रत्येकस्य पञ्चस्थानान्येवापत्य-द्वन्द्वानि पञ्चदशमितानि—इत्येवं गणनयैकविंशत्यधिकैकविंशतिशतद्वन्द्वव्याप्यं भवति ।

तद्यथा—

अथावशिष्टानां समानां द्वन्द्वानां मातृपद्याणां प्रत्येकस्य पञ्चदशमितान्यपत्यद्वन्द्वानि प्रदर्शिते सप्तकक्षेऽपत्यद्वन्द्वचक्रेऽन्त्ययोर्द्वयोः कक्षयोः परित्यागावशेषादुपलभ्यन्ते । तेषामेषां जनकद्वन्द्वानां जन्यद्वन्द्वानां च यानि सम्बन्धक्लृप्तानि नामानि तान्यत ऊर्ध्वं प्रदर्श्यन्ते —

प्रतिस्थानं द्वन्द्वसंख्या	वरसम्बन्धिनः सप्तस्थानाः	जनकद्वन्द्वानां समष्टिसंख्या	प्रतिजनकद्वन्द्वं जन्यद्वन्द्वसंख्या	जन्यद्वन्द्वानां समष्टिसंख्या
प्रथमस्थाने वरः केवलः—				
द्वितीयस्थाने द्वन्द्वमेकम्				
	वरस्य पितरौ	१	६३	६३
तृतीयस्थाने द्वन्द्वमेकम्,				
१	पितामहौ	२	६३	१२६
चतुर्थस्थाने द्वे द्वन्द्वे—				
१	प्रपितामहौ	३	६३	१८९
२	पितृमातामहौ	४	६३	२५२
पञ्चमस्थाने चत्वारि द्वन्द्वानि—				
१	वृद्धप्रपितामहौ	५	६३	३१५
२	पितामहमातामहौ	६	६३	३७८
३	पितृप्रमातामहौ	७	६३	४४१
४	पितामहीमातामहौ	८	६३	५०४
षष्ठस्थानेऽष्टौ द्वन्द्वानि—				
१	अतिवृद्धप्रपितामहौ	९	६३	५६७
२	प्रपितामहमातामहौ	१०	६३	६३०
३	पितामहप्रमातामहौ	११	६३	६९३
४	प्रपितामहीमातामहौ	१२	६३	७५६
५	पितृवृद्धप्रमातामहौ	१३	६३	८१९
६	पितृमातामहमातामहौ	१४	६३	८८२

७ पितामहीप्रमातामहौ	१५	६३	९४५
८ पितामहीमातृमातामहौ	१६	६३	१००८

सप्तमस्थाने षोडशद्वन्द्वानि—

१ परमातिवृद्धप्रपितामहौ	१७	६३	१०७१
२ वृद्धप्रपितामहमातामहौ	१८	६३	११३४
३ प्रपितामहप्रमातामहौ	१९	६३	११९७
४ वृद्धप्रपितामहीमातामहौ	२०	६३	१२६०
५ प्रपितामहीप्रपितामहौ	२१	६३	१३२३
६ प्रपितामहीपितृमातामहौ	२२	६३	१३८६
७ प्रपितामहीप्रमातामहौ	२३	६३	१४४९
८ प्रपितामहीमातृमातामहौ	२४	६३	१५१२
९ पितामहीवृद्धप्रपितामहौ	२	६३	१५७५
१० पितृप्रमातामहमातामहौ	२६	६३	१६३८
११ पितृमातामहप्रमातामहौ	२७	६३	१७०१
१२ पितृमातामहमातृमातामहौ	२८	६३	१७६४
१३ पितामहीवृद्धप्रमातामहौ	२९	६३	१८२७
१४ पितामहीमातामहमातामहौ	३०	६३	१८९०
१५ पितामहीमातामहीपितामहौ	३१	६३	१९५३
१६ पितामहीमातामहीमातामहौ	३२	६३	२०१६

एवमुक्तानि पितृपद्याणि जनकद्वन्द्वानि द्वात्रिंशन्मितानि। यानि त्वेषां प्रत्येकस्य जन्य-द्वन्दानि त्रिषष्टिमितानि तान्यत ऊर्द्ध्वं प्रदर्श्यन्ते—

प्रथमे स्थाने कूटस्थद्वन्द्वमेकम्—

मातापितरौ

द्वितीयस्थाने द्वन्द्वमेकम्—

१ कूटस्थस्य, पुत्रः, दुहिता च

तृतीयस्थाने द्वन्द्वे द्वे—

१ पौत्रः, पौत्री च

२ दौहित्रः दौहित्री च

चतुर्थस्थाने द्वन्द्वानि चत्वारि—

१	प्रपौत्रः प्रपौत्री च	४
२	पौत्रीपुत्रः पौत्रीपुत्री च	५
३	दौहित्रपुत्रः दौहित्रपुत्री च	६
४	दौहित्रीपुत्रः दौहित्रीपुत्री च	७

पञ्चमस्थाने द्वन्द्वान्यष्टौ—

१	वृद्धप्रपौत्रः वृद्धप्रपौत्री च	८
२	प्रपौत्रीपुत्रः प्रपौत्रीपुत्री च	९
३	पौत्रीपौत्रः पौत्रीपौत्री च	१०
४	पौत्रीदौहित्रः पौत्रीदौहित्री च	११
५	दौहित्रपौत्रः दौहित्रपौत्री च	१२
६	दौहित्रदौहित्रः दौहित्रदौहित्री च	१३
७	दौहित्रीपौत्रः दौहित्रीपौत्री च	१४
८	दौहित्रीदौहित्रः दौहित्रीदौहित्री च	१५

षष्ठस्थाने षोडश द्वन्द्वानि—

१	अतिवृद्धप्रपौत्रः अतिवृद्धप्रपौत्री च	१६
२	प्रपौत्रदौहित्रः प्रपौत्रदौहित्री च	१७
३	प्रपौत्रीपौत्रः प्रपौत्रीपौत्री च	१८
४	प्रपौत्रीदौहित्रः प्रपौत्रीदौहित्री च	१९
५	पौत्रीप्रपौत्रः पौत्रीप्रपौत्री च	२०
६	पौत्रीपुत्रदौहित्रः पौत्रीपुत्रदौहित्री च	२१
७	पौत्रीपुत्रीपौत्रः पौत्रीपुत्रीपौत्री च	२२
८	पौत्रीपुत्रीदौहित्रः पौत्रीपुत्रीदौहित्री च	२३
९	दौहित्रप्रपौत्रः दौहित्रप्रपौत्री च	२४
१०	दौहित्रपुत्रदौहित्रः दौहित्रपुत्रदौहित्री च	२५
११	दौहित्रपुत्रीपौत्रः दौहित्रपुत्रीपौत्री च	२६
१२	दौहित्रपुत्रीदौहित्रः दौहित्रपुत्रीदौहित्री च	२७

१३ दौहित्रीपुत्रपौत्रः दौहित्रीपुत्रपौत्री च — २८
१४ दौहित्रीपुत्रदौहित्रः दौहित्रीपुत्रदौहित्री च — २९
१५ दौहित्रीपुत्रीपौत्रः दौहित्रीपुत्रीपौत्री च — ३०
१६ दौहित्रीपुत्रीदौहित्रः दौहित्रीपुत्रीदौहित्री च — ३१

सप्तमस्थाने स्वासामेव षष्ठस्थानानां द्वात्रिंशद्व्यक्तीनां पुत्रकन्यारूपाणि द्वात्रिंशद्द्वन्द्वानि। तान्येतानि सर्वाणि सङ्कलनया त्रिषष्टिमितानि द्वन्द्वानि भवन्ति। तत्र गताश्च तास्त्रिषष्टिमिताः कन्यास्तेन वरेणाविवाह्याः। तदित्थं पितृपक्षे सङ्कलनायां षोडशाधिकद्विसहस्रमिताः कन्या वर्ज्यत्वेन सिद्धाः॥ (२०१६)॥

अथ मातृतस्तावत् पञ्चस्थानानि जनकद्वन्द्वानि सप्त भवन्ति। तथा हि—

	जनकद्वन्द्वानां संख्या	प्रति-जनक-द्वन्द्वं जन्यद्वन्द्वानां जन्यद्वन्द्वसंख्यां	समष्टिसंख्या
प्रथमस्थाने—वरः केवलः।			
द्वितीयस्थाने—वरस्य माता।			
तृतीयस्थाने—मातामहौ।	१	१५	१५
चतुर्थस्थाने—प्रमातामहौ।	२	१५	३०
मातृमातामहौ।	३	१५	४५
पञ्चमस्थाने—वृद्धप्रमातामहौ।	४	१५	६०
मातामहमातामहौ।	५	१५	७५
मातृप्रमातामहौ।	६	१५	९०
मातामहीमातामहौ।	७	१५	१०५

एवमुक्तानि मातृपक्ष्याणि जनकद्वन्द्वानि सप्तमितानि। एषामपि यानि प्रत्येकस्य जन्यद्वन्द्वानि पञ्चदशमितानि तानि प्रदर्श्यन्ते।

प्रथमस्थाने—किञ्चिदेकं मूलद्वन्द्वं मातापितरौ कूटस्थम्।
द्वितीयस्थाने—कूटस्थस्य पुत्रो दुहिता च।
तृतीयस्थाने—पौत्रः पौत्री च।
दौहित्रो दौहित्री च।
चतुर्थस्थाने—प्रपौत्रः प्रपौत्री च।
पौत्रीपुत्रः पौत्रीपुत्री च।

दौहित्रपुत्रः दौहित्रपुत्री च ।
दौहित्रीपुत्रः दौहित्रीपुत्री च ।
पञ्चमस्थाने—वृद्धप्रपौत्रः वृद्धप्रपौत्री च ।
प्रपौत्रीपुत्रः प्रपौत्रीपुत्री च ।
पौत्रीपौत्रः पौत्रीपौत्री च ।
पौत्रीदौहित्रः पौत्रीदौहित्री च
दौहित्रपौत्रः दौहित्रपौत्री च ।
दौहित्रदौहित्रः दौहित्रदौहित्री च ।
दौहित्रीपौत्रः दौहित्रीपौत्री च ।
दौहित्रीदौहित्रः दौहित्रीदौहित्री च ।

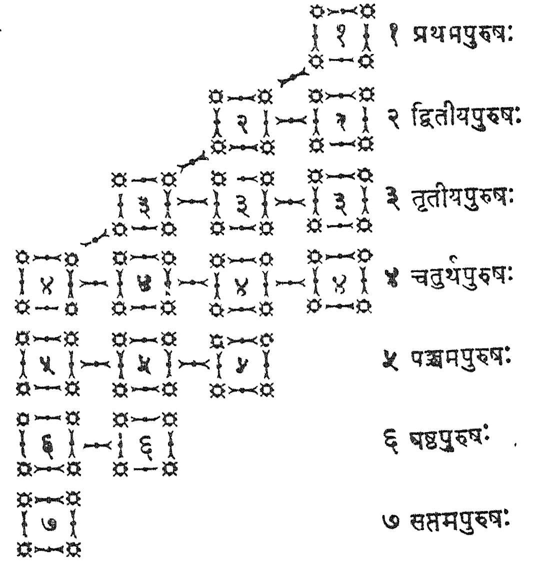
इत्थमेषां पञ्चस्थानानां पञ्चदशानां अन्यद्वन्द्वानां पूर्वोक्तेषु सप्तसु जनकद्वन्द्वेषु प्रत्येक निपाते पञ्चोत्तरशतमितानि मातृपक्षे द्वन्द्वानि लभ्यन्ते । यत्र गताश्च ताः पञ्चोत्तरशतमिताः कन्याः मातृपक्षे वर्ज्यत्वेन सिद्धाः । तदित्थं-पितृकुले षोडशाऽधिकद्विसाहस्री २०१६, मातृकुले तु पञ्चोत्तरं शतम्(१०५) अनयोः संकलनायामेकविंशत्यधिकैकविंशतिशतसंख्या २१२१ सिद्धा भवति । एतावत्यः कन्या विवाहे वर्ज्याः । एतावद्व्याप्यमेव च विवाहसापिण्ड्यम्-इत्याहुर्दाक्षिणात्यानां केचित् ॥ गौडास्तु नैतं प्रकारं साधीयोऽनुमन्यन्ते । इत्थं सापिण्ड्यस्य भ्रमपूर्णत्वात् । यत्तु खलु गौडमैथिलाद्यनुगृहीतं विशुद्धं विवाहसापिण्ड्यं तत्तद्ग्रन्थे दृश्यते तदन्यत्र समीक्षायां विवाहसंस्कारनिरूपणप्रसङ्गे वैशद्येन प्रदर्शयिष्यामः । इति विवाहसापिण्ड्यम् ॥५॥

दायसापिण्ड्यम् ।

५६—निरूपितं विवाहसापिण्ड्यम् । अथ प्रसङ्गाद्दायसापिण्ड्यं निरूप्यते । दायविभागे तावत्-स्वं, पिता, पितामहः, प्रपितामहः—इत्येते चत्वारः, तथैतेषां चतुर्णां प्रत्येकस्य पुत्रपौत्रप्रपौत्राश्च-इत्येवमेते षोडश पुरुषा मिथः सपिण्डाः । तत्र स्वं, तस्य पुत्रपौत्रप्रपौत्राश्चेति चतुष्कं स्ववर्गः । एवं पितृवर्गः । एवं पितामहवर्गः । एवं प्रपितामहवर्गः । इत्थं वर्गभेदाच्चातुःपौरुषं सापिण्ड्यम् । वंशक्रमे तु प्रपितामहेन प्रथमपुरुषानुगमः, पितामहेन प्रपितामहपुत्रैश्च द्वितीयपुरुषानुगमः । पित्रा पितामहपुत्रैः प्रपितामहपौत्रैश्च तृतीयपुरुषानुगमः । स्वेन पितृपुत्रैः पितामहपौत्रैः प्रपितामहप्रपौत्रैश्च चतुर्थपुरुषानुगमः । स्वपुत्रैः पितृपौत्रैः पितामहप्रपौत्रैश्च पञ्चमपुरुषानुगमः । स्वपौत्रैः पितृपौत्रैश्च षष्ठपुरुषानुगमः । स्वप्रपौत्रैस्तु सप्तमपुरुषानुगमः तदित्थं-पिता, पितामहः, प्रपितामहश्चेति त्रयः पुरुषाः कूटस्थादुपरितनाः, पुत्रः, पौत्रः, प्रपौत्रश्चेति त्रयः कूटस्थादवस्तनाः, कूटस्थश्चैको मध्यमः पुरुष इत्येवं कक्षाभेदात् साप्तपौरुषं सापिण्ड्यं सिद्धम् । यथा—

(कक्षामेरुः)

स्ववर्गः	पितृवर्गः	पितामहवर्गः	प्रपितामहवर्गः	
			प्रपितामहः	३ प्रपितामहकक्षा
		पितामहः	पुत्रः	२ पितामहकक्षा
	पिता	पुत्रः	पौत्रः	१ पितृकक्षा
स्वं	पुत्रः	पौत्रः	प्रपौत्रः	+ कूटस्थकक्षा
पुत्रः	पौत्रः	प्रपौत्रः	प्रपितामहवर्गः	१ पुत्रकक्षा
पौत्रः	प्रपौत्रः	पितामहवर्गः		२ पौत्रकक्षा
प्रपौत्रः	पितृवर्गः			३ प्रपौत्रकक्षा
स्ववर्गः				



तत्र प्रथमं स्ववर्ग्याः पुत्रादयः क्रमेण दायं भजन्ते । स्ववर्ग्याभावे पितृवर्ग्याः । तदभावे पितामहवर्ग्याः । तदभावे प्रपितामहवर्ग्याः— इति दायग्रहणक्रमः । प्रत्यासत्तिरेवात्र मूलम् । प्रपितामहवर्ग्यापेक्षया पितामहवर्ग्याणां, तदपेक्षया च पितृवर्ग्याणां, ततोऽपि स्ववर्ग्याणां च प्रत्यासन्नत्वात् । प्रतिवर्गमपि प्रपौत्रापेक्षया पौत्रस्य, ततः पुत्रस्य ततोऽपि वर्गारम्भकस्य पित्रादेः प्रत्यासन्नत्वात् ॥ तदुक्तम्— "यस्यासन्नतरस्तेषां सोऽनपत्यधनं हरेत्" इति तथा चात्र दायभागे पिता, पितामहः, प्रपितामह इत्येते त्रयः पूर्वे, पुत्रः, पौत्रः, प्रपौत्र इत्येते त्रयः परे, मध्यमश्चैकः कूटस्थ—इति साप्तपौरुषं दायसापिण्ड्यं व्याख्यातम् । इति दायसापिण्ड्यम् ॥ ६ ॥

आशौचसापिण्ड्यम् ।

(शरीरारम्भककलारहस्यम्)

५९—अथाशौच-सापिण्ड्यं चतुर्धा—अवयवसापिण्ड्यम्, पुत्रे निवाप्यसापिण्ड्यम्, पितृषु निवाप्यसापिण्ड्यम्, उत्तरसापिण्ड्यं चेति । तथाहि—पुत्रे, पौत्रे, प्रपौत्रे, वृद्धप्रपौत्रे,

अतिवृद्धप्रपौत्रे, परमातिवृद्धप्रपौत्रे च जनकैकशरीरावयवा अनुवर्तन्ते, नात ऊर्ध्वम् । तथा च षडपत्यानि, एकः कूटस्थो जनक— इति साप्तपौरुषमवयवसापिण्ड्यं भवति । तदुक्तम्— "सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते" इति ।। तत्राष्टाविंशतिकलास्तावत् पितृरूपैकशरीरस्थस्तदेकशरीरावयवो मूलपिण्डः । तस्योत्तरोत्तरमनुवर्तमानानामेकशरीरावयवानां पिण्डभागानामित्थं मात्राविभागा भवन्ति । सप्तकलः स्वस्मिन्, षट्कलः पुत्रे, पञ्चकलः पौत्रे, चतुष्कलः प्रपौत्रे, त्रिकलो वृद्धप्रपौत्रे, द्विकलोऽतिवृद्धप्रपौत्रे, एककलस्तु परमातिवृद्धप्रपौत्रे इति । तदित्थं सप्तसु स्थानेषु विभक्ता एते निवाप्याः पिण्डभागा एवैतेषां सप्तानां परस्परं सम्बन्धसूत्रम् । एष चैकपितृप्रतियोगिकः षडपत्यानुयोगिकः सम्बन्धः—इत्यवयवसापिण्ड्यम् ।। १ ।।

५५—यत्तु एकस्मिन् कूटस्थेऽपत्ये पूर्वेषां षण्णां पितॄणां भिन्नभिन्ना अवयवा ऐक्यभावाय समुच्चीयन्ते, तदिदं पुत्रे निवाप्यसापिण्ड्यं भवति । तत्र चतुरशीतिकलस्तावत् पुत्ररूपैकशरीरस्थः सप्तशरीरावयवो मूलपिण्डः । तस्यैकत्र शरीरे समुच्चीयमानस्यारम्भकाणां सप्तशरीरावयवानां पिण्डभागानामित्थं मात्राविभागा भवन्ति—एककलः परमातिवृद्धप्रपितामहस्य । त्रिकलोऽतिवृद्धप्रपितामहस्य । षट्कलो वृद्धप्रपितामहस्य । दशकलः प्रपितामहस्य । पञ्चदशकलः पितामहस्य । एकविंशतिकलः पितुः । अष्टाविंशतिकलस्तु स्वस्येति । तदित्थं सप्तस्थानेभ्यो लब्धा एते निवाप्याः पिण्डभागा एवैतेषां सप्तानां परस्परं सम्बन्धसूत्रम् । स एष षट्पितृप्रतियोगिक एकापत्यानुयोगिकः सम्बन्धः । इति पुत्रे निवाप्यसापिण्ड्यम् ।। २ ।।

५६—एतत्सम्बन्धद्वयमेवोपजीव्येदमेकैकमपत्यमपि पूर्वेषु षट्सु पितृषु पिण्डान्निवाप्यविभागेन तानाप्याययति । तत्रेदमपत्यं तावदेकं पिण्डदं कूटस्थम् । तत ऊर्ध्वास्त्रयः पिण्डभागिनः । ततोऽप्यूर्ध्वास्त्रयः पिण्डलेपभागिनः—इत्येव साप्तपौरुषं पितृषु निवाप्यसापिण्ड्यम् । तदुक्तम्—

"लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्" ।। १ ।। इति

कथं चैतेऽपत्येन न्युप्ताः पिण्डा ऊर्ध्वं पितृषु षट्स्वाप्यायका भवन्तीत्येतन्निवापतत्त्वं श्राद्धतत्त्वसमीक्षायामन्यत्रोपपादयिष्यामः ।। इति पितृषु निवाप्यसापिण्ड्यम् ।। ३ ।।

५७—अथोत्तरसापिण्ड्यं, प्रेतसापिण्ड्यं, प्रत्यर्प्यसापिण्ड्यमित्येकार्थाः । इह हि मरणोत्तरं यदस्य सपिण्डीकरणं क्रियते, तन्निबन्धनो निवापक्रमः प्रदर्श्यते । सन्तानोत्पादनादूर्ध्वं तदुत्पादकशरीरे सप्तकोशावयवा अष्टाविंशतिकला अवशिष्यन्ते । स प्रेत्य पितृलोकं गत्वा ततः स्वीयाभिः सप्तकलाभिः पृथगिवात्मानं धारयमाणः, षट्कलाभिः पितृदत्ताभिः पित्रा, पञ्च-

कलाभिः पितामहदत्ताभिः पितामहेन, चतुष्कलाभिः प्रपितामहदत्ताभिः प्रपितामहेन, त्रिकलाभिर्वृद्धप्रपितामहदत्ताभिस्तेन, द्वाभ्यामतिवृद्धप्रपितामहदत्ताभ्यां तेन, तथैकया कलया परमातिवृद्धप्रपितामहदत्तया तेन सह सन्धत्ते । स इत्थं सपिण्डनात् पूर्वैः षड्भिः पुरुषैः सहैकभाव्यं गमितश्चन्द्रलोके कञ्चित्कालमवतिष्ठते तदेतदप्यन्यत्रोपपादयिष्यामः । इत्युत्तरसापिण्ड्यम् ॥ ४ ॥
इति आशौचसापिण्ड्याधिकारः ॥ ७ ॥

८—पिण्ड-रहस्यम् ।

(आशौचस्य मुख्योपपत्तिः)

५८—अथैतेषां चतुर्विधानामप्याशौचसापिण्ड्यानामुपपत्तिज्ञानार्थं सापिण्ड्यगतपिण्डपदार्थः पूर्वं प्रदर्शितोऽपीदानीं वैशद्येन पुनर्निरूप्यते । एकपिण्डान्वयः सापिण्ड्यम् । पिण्डस्तु मूलपुरुषो वा, तच्छरीरावयवो वा, निवापो वा, अन्नपाको वा, सोमाग्निमयं शुक्रशोणितद्रव्यं वेत्यनेकधा पश्यन्ति । शुक्रनिवापो बीजपिण्डम् । शोणितनिवापस्तु क्षेत्रपिण्डम् । तत्र तावत् सोममयं शुक्रनिवापं व्याख्यास्यामः । चेतनाधातुषष्ठाः पञ्चभूतविकाराः शुक्रम् । प्रकारान्तरेण चेतनाधिष्ठितं तेजोऽबन्नमयं शुक्रम् । तत्र यावती पृथिवी, यावानग्निस्तदन्नम् । यावज्जलं यावान् वायुस्ता आपः । यावानाकाशस्तत्तेजः, स सोमः । स हि शुक्रगतः सप्तकोशो निवाप्यः सोमः । तत्र तावत् प्रथमकोशोऽष्टाविंशतिकलः । २८ । द्वितीय एकविंशतिकलः । २१ । तृतीयः पञ्चदशकलः । १५ । चतुर्थो दशकलः । १० । पञ्चमः षट्कलः । ६ । षष्ठस्त्रिकलः । ३ । सप्तम एककलः । १ । इत्थं चतुरशीतिकलोऽयं निवाप्यः सोमः । स कूटस्थस्य शरीरावयवो भवति । तदिदं सोमद्रव्यम् । तत्रैकस्तृतीयांशः स्वो भागः । द्वौ तृतीयांशौ तु पूर्वेषां षण्णां पितृणां भाग इत्यवसेयम् । अथात्र प्रथमादष्टाविंशतिकलात् कोशाच्चतुर्थांशात्मिकाः सप्तकला अतिरिच्यैकविंशतिकलाभिरन्यः कोश उत्पद्यते । द्वितीयादेकविंशतिकलात् सार्द्धतृतीयांशात्मिकाः षट्कला अतिरिच्य पञ्चदशकलाभिरन्यः । तृतीयात् पञ्चदशकलात् तृतीयांशात्मिकाः पञ्चकला अतिरिच्य दशकलाभिरन्यः । चतुर्थाद्दशकलात् सार्द्धद्वितीयांशात्मिकाश्चतुःकला अतिरिच्य षट्कलाभिरन्यः । पञ्चमात् षट्कलाद् द्वितीयांशात्मिकास्तिस्रः कला अतिरिच्य त्रिकलाभिरन्यः । षष्ठात् त्रिकलात् सार्द्धैकांशात्मिके द्वे कले अतिरिच्यैकया कलया चान्यः । सप्तमात् त्वेककलादेकांशात्मिकामेकां कलामतिरिच्य शून्यकलया चान्यः तत्र शून्यकलस्य सप्तमस्यासत्वप्रायत्वात् षट्कोशो निवापः पृथ्वीस्थानादन्तरिक्षे संतानितोऽङ्कुरोद्गम इव पितृशरीरान्तरि संतानितः षाट्कौशिकशरीरात्मना परिणमते । सोऽयमित्थं षट्पंचाशत्कलः षट्कोशो निवापः पिण्डापरपर्यायः सुतशरीरस्योपादानं सम्पद्यते । तेन चतुरशीतिकलादात्मनो निवाप्य-

सोमद्रव्यान्मूलराशिरूपादिदानीं षट्पञ्चाशत्कलाभिर्निर्वापरूपाभिः पत्नीशरीरे सुत्वा स्वयमष्टविंशतिकलः पिता अवशिष्यते । सुतस्तु षट्पञ्चाशत्कल एवादौ भूत्वा स्वशरीरे संचरता चन्द्रेण षोडशिना षोडशभिः संवत्सरैः सम्पादितेनान्येनाष्टाविंशतिकलेन कोशेन संभूय चतुरशीतिकलः पूर्णः पुरुषो भवति । यथा—

२८
२१ २८
१५ २१ २८
१० १५ २१ २८
६ १० १५ २१ २८
३ ६ १० १५ २१ २८
१ ३ ६ १० १५ २१ २८ = (८४)
१ ३ ६ १० १५ २१ २८
१ ३ ६ १० १५ २१ २८
१ ३ ६ १० १५ २१ २८
१ ३ ६ १० १५ २१ २८
१ ३ ६ १० १५ २१ २८
१ ३ ६ १० १५ २१ २८

७
६ ७
५ ६ ७
४ ५ ६ ७
३ ४ ५ ६ ७
२ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ = (२८)
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७

स चायमेकः शरीरी स्वीयाभिरष्टाविंशतिकलाभिः समन्वितः पितुरेकविंशतिकलाभिः, पितामहस्य पञ्चदशकलाभिः, प्रपितामहस्य दशकलाभिः, वृद्धप्रपितामहस्य षट्कलाभिः अतिवृद्ध-प्रपितामहस्य त्रिकलाभिः, परमातिवृद्धप्रपितामहस्यैककलया च संबद्धः सप्तकोशं चतुरशीतिकलं शरीरं लब्ध्वा पित्रादीनामृणी भवति । स पुनः स्वभागादेकविंशतिकलाः, पितुर्भागात् पञ्चदश-कलाः, पितामहभागाद्दशकलाः, प्रपितामहभागात् षट् कलाः, वृद्धप्रपितामहभागात् त्रिकलाः, अतिवृद्धप्रपितामहभागादेककलां च पुत्रे, ततो भूयस्तदनन्तरास्ताः पञ्चदशादिकाः कलाः पौत्रे, ततो दशादिकाः कलाः प्रपौत्रे, पुनः षडादिकाः कला वृद्धप्रपौत्रे, पुनस्त्र्यादिकाः कला अतिवृद्ध-प्रपौत्रे, पुनरेकां कलां परमातिवृद्धप्रपौत्रे न्युप्य पितृलब्धभागानां पुत्रादिष्वन्वयात् स्वयमनृणो भवति । स स्वीयाभ्योऽष्टाविंशतिकलाभ्यः सप्तकलामात्रमपरित्यज्य तदतिरिक्तास्वेकविंशतिकलासु षट्कलाः पुत्रे, पञ्चकलाः पौत्रे, चतस्रः कलाः प्रपौत्रे, तिस्रः कला वृद्धप्रपौत्रे, द्वे कले अतिवृद्ध-प्रपौत्रे, एकां कलां परमातिवृद्धप्रपौत्रे—न्युप्य तेन पितृभ्य ऋणकारप्रत्यर्थस्यां पृथ्व्यां द्वारान्तरमुत्पाद्य स्वयमृणात् पित्र्यात् प्रमुच्यते । अथवा अयं पुरुषायमष्टाविंशतिकलं सोमकोशं स्वतो लभते । ततः सप्तकलमात्मन्याधायैकविंशतिकला अपत्येषु क्रमेण सुवति । ताः

पुनः कालान्तरेणात्मनि लभते, तदा पुनः सम्पद्यते । तत्र पौत्रकर्तृके सपिण्डने

पुत्रगताः षट्कला लभते । एवं प्रपौत्रकृते सपिण्डने पौत्रगताः पञ्च कलाः । वृद्धप्रपौत्रकृते चतस्रः कलाः । अतिवृद्धप्रपौत्रकृते तिस्रः कलाः । परमातिवृद्धप्रपौत्रकृते द्वे कले । अष्टमापत्यकृते तु सपिण्डीकरणेऽन्त्यामेकां कलामप्युपलभ्याष्टाविंशतिकलस्य पूर्णस्यात्मीय-सोम-पिण्डस्यात्मन्येव समर्पणात्पूर्णो भूत्वा पृथिव्या त्यक्तसम्बन्धसूत्रो बन्धनाद्विमुच्यते ॥ स इत्थं विशुद्धो मुक्तबन्धनः स्वां गतिं प्रतिपद्यते । चन्द्रलोकादुत्थायादित्यलोकं गच्छतीत्याहुः स्मृतिविदः ॥ तथा चात्र प्रतिशरीरं चतुरशीतिकलं सोमद्रव्यं सिद्धं भवति । तत्राष्टाविंशतिकला यावज्जीवनमात्मन्येव निहिता देहत्यागोत्तर तेष्वेव पितृषु पुनः प्रत्यर्प्यन्ते । यथा परमातिवृद्धे प्रपितामहे एका कला, अतिवृद्धे प्रपितामहे द्वे कले, वृद्धे प्रपितामहे तिस्रः कलाः, प्रपितामहे चतस्रः कलाः, पितामहे पञ्च कलाः, पितरि षट् कलाः—प्रत्यर्प्यन्ते । अवशिष्टाभिस्तु सप्तकलाभिरात्मानं पृथगिव धत्ते । तदित्थमेता अष्टाविंशतिकला यावज्जीवनमात्मन्येव निधेयाः, न तु पुत्रेषु निवाप्या इत्युक्तम् । परास्तु षट्पञ्चाशत् कलाः सूयन्ते । स निवापः सपिण्ड इति सिद्धम् । यथा—

सप्तकोशचक्रम् ।

	मूलकलाः		आत्मनिधेयकलाः		निवाप्यकलाः
परमातिवृद्धप्रपितामहकलाः	१	—	१	=	०
अतिवृद्धप्रपितामहकलाः	३	—	२	=	१
वृद्धप्रपितामहाल्लब्धाः कलाः	६	—	३	=	३
प्रपितामहाल्लब्धाः कलाः	१०	—	४	=	६
पितामहाल्लब्धाः कलाः	१५	—	५	=	१०
पितुर्लब्धाः कलाः	२१	—	६	=	१५
स्वतो लब्धाः कलाः	२८	—	७	=	२१
सप्तकोशकलायोगः	८४		२८		५६

———

सप्तपदीचक्रम्

परमातिवृद्ध प्रपितामहे	अतिवृद्ध प्रपितामहे	वृद्ध प्रपितामहे	प्रपिता महे	पितामहे	पितरि	स्वस्मिन्	
१	२	३	४	५	६	७	पितृषु निवापः
१	३	६	१०	१५	२१	२८	कूटस्थमूलराशिः
०	१	३	६	१०	१५	२१	अपत्येषु निवापः
...	परमातिवृद्ध प्रपौत्रे	अतिवृद्ध-प्रपौत्रे	वृद्ध प्रपौत्रे	प्रपौत्रे	पौत्रे	पुत्रे	

एवमयं चतुरशीतिकलात् सोमद्रव्यान्मूलराशेरनिवाप्यभागेऽष्टाविंशतिकलेऽविरेचितेऽवशिष्टः षट्पञ्चाशत्कलो निवापः पितृभागः। अथाष्टाविंशतिकलो वृद्धिराशिः स्वभागः। ताभ्यामन्ववेताभ्यां पुनरन्यश्चतुरशीतिकलः सोमद्रव्यः सप्तकोशः संपद्यते । स उत्तरत्र निवापाय मूलराशिर्भवति। इत्थमावंशविच्छेदमुत्तरोत्तरक्रमो नेयः। यथा—

पितृलब्धराशिः पितृनिवाप्यराशिः सवनीयराशिः
मूलराशिः अनिवाप्यराशिः— पुत्रनिवाप्यराशिः

८४ — २८ = ५६ पितृभागः
२८ स्वभागः
—
८४—२८=५६ पितृभागः
२८ स्वभागः
—
८४-२८-५६ पितृभागः
२८ स्वभागः
—
८४

तथा चेत्थमस्य सन्तानक्रमनिष्कर्षः ।। प्रतिशरीरं सप्तकोशश्चतुरशीतिकलः सोमो द्रव्यम् । तत्राष्टाविंशतिकलः सप्तमः कोशः स्वधनम् । तस्य सप्त कलाः स्वस्मिन् । षट् पुत्रे । पञ्च पौत्रे । चतस्रः प्रपौत्रे । तिस्रो वृद्धप्रपौत्रे । द्वे अतिवृद्धप्रपौत्रे । एका तु परमातिवृद्धप्रपौत्रे इत्थं सप्तपुरुषविभागेन सर्वाः कलाः सन्तानिताः सत्यः परत्र निरवशेषा भवन्ति ।। १ ।।

यस्त्वेकविंशतिकलः षष्ठः कोशः पितृधनम् तस्य षट् कलाः स्वस्मिन् । पञ्च पुत्रे । चतस्रः पौत्रे । तिस्रः प्रपौत्रे । द्वे वृद्धप्रपौत्रे ; एका त्वतिवृद्धप्रपौत्रे । इत्थं षट्पुरुषविभागेन संतानिताः सर्वाः कला निरवशेषा भवन्ति ।। २ ।।

यस्तत्र पञ्चदशकलः पञ्चमः कोशः पितामहधनम् । तस्य पञ्च कलाः स्वस्मिन् । चतस्रः पुत्रे । तिस्रः पौत्रे । द्वे प्रपौत्रे । एका तु वृद्धप्रपौत्रे । इत्थं पञ्चसु पुरुषेषु संतानिता निरवशेषा भवन्ति ।। ३ ।।

एवं यो दशकलश्चतुर्थः कोशः प्रपितामहधनम्, तस्य चतस्रः स्वस्मिन् । तिस्रः पुत्रे । द्वे पौत्रे । एका तु प्रपौत्रे । इत्थ चतुर्षु पुरुषेषु संतानिता निरवशेषा भवन्ति ।। ४ ।।

अथ यः षट्कलस्तृतीयः कोशो वृद्धप्रपितामहधनम्, तस्य तिस्रः स्वस्मिन् । द्वे पुत्रे । एका तु पौत्रे । इत्थ त्रिषु सतानिता निरवशेषा भवन्ति ।। ५ ।।

तथा यस्त्रिकलो द्वितीयः कोशोऽतिवृद्धप्रपितामहधनम्, तस्य द्वे स्वस्मिन् । एका तु पुत्रे-इत्थं द्वयोः सन्तानान्निरवशेषम् ।। ६ ।।

यस्तु पुनरेककलः प्रथमः कोशः परमातिवृद्धप्रपितामहधनम्, तस्य सा कला स्वस्मिन्नेव परिसमाप्नोति न सा परत्र संतानिता भवति ।। ७ ।।

तदित्थं सर्वसमष्टया सप्तकोशधनस्याष्टाविंशतिः कलाः स्वस्मिन् । एकविंशतिः पुत्रे । पञ्चदश पौत्रे । दश प्रपौत्रे । षड् वृद्धप्रपौत्रे । तिस्रोऽतिवृद्धप्रपौत्रे । एका तु परमातिवृद्धप्रपौत्रे संतानिता निरवशेषा भवन्ति । यथा—

पिण्ड-सन्तान-क्रम-चक्रम् ।

		स्वस्मिन्	पुत्रे	पौत्रे	प्रपौत्रे	वृ०प्रपौत्रे	अतिवृद्ध प्रपौत्रे	परमाति वृद्धप्रपौत्रे	
	८४	२८	२१	१५	१०	६	३	१	०
स्वस्य	२८	७	६	५	४	३	२	१	०
पितुः	२१	६	५	४	३	२	१	०	
पितामहस्य	१५	५	४	३	२	१	०		
प्रपितामहस्य	१०	४	३	२	१	०			
वृद्धप्रपितामहस्य	६	३	२	१	०				
अतिवृद्धप्रपितामहस्य	३	२	१	०					
परमातिवृद्धप्रपितामहस्य	१	१	०						
	०	०							

५६—वस्तुतस्तु अष्टाविंशतिकलः सोमकोशः प्रतिशरीरमष्टाविंशत्यहर्गणभोग्याच्चन्द्रचारादुपपद्यते स मूलराशिः। तस्य संतानोत्पत्तिकाले राशिद्वयं भवति । एकविंशतिकलः संतानराशिः। स हि तच्छरीरात् संतानितः पुत्रशरीरेऽवतिष्ठते । अथावशिष्टः सप्तकलः स्वभुक्तराशिः। स हि स्वीयशरीरस्थित्युपयुक्तः शरीरत्यागोत्तरमपि स्वस्मिन्नेव समासज्यते न परत्र संतन्यते। तस्मात् स सप्तकलः संतानशेषराशिः। १ । ततः पुत्रशरीरात् पुनः संतानोत्पत्तिकाले तस्यैकविंशतिकलस्य राशिद्वयं भवति। पञ्चदशकलः संतानराशिः । षट्कलः सन्तानशेषराशिः।

स हि पुत्रशरीरत्यागोत्तर स्वस्मिन् पुनः समासज्यते । २ । पञ्चदशकलस्यापि पूर्ववद् राशिद्वयं भवति । दशकलः संतानराशिः । पञ्चकलः शेषराशिः । स हि पौत्रशरीरत्यागोत्तरं सपिण्डनात् स्वस्मिन् पुनः समासज्यते । ३ । दशकलस्यापि राशिद्वयं भवति । षट्कलः संतानराशिः । चतुःकलः शेषराशिः । ४ । षट्कलस्यापि राशिद्वयं भवति । त्रिकलः संतानः त्रिकलः शेषः । ५ । त्रिकलस्यापि द्वौ राशी—एककलः सन्तानो द्विकलः शेषः । ६ । अथैककलस्य संतानाभावात् सतानशेष एवासौ भवति । ७ । तथा च संतानोत्पत्तेः प्राक् पूर्वक्रमागतराशिभिः सहितेन स्वराशिना प्रतिशरीरं चतुरशीतिकलः सोमकोशः सपद्यते । संतानोत्पत्तेः पश्चात् तु पूर्वक्रमागतराशिभिः सहितेन स्वराशिना अष्टाविशतिकलोऽवतिष्ठते । यथा—

संतानराशिचक्रम्

सप्तमपुरुषः	षष्ठपु०	पञ्चमपु०	चतुर्थपु०	तृ०पु०	द्वि०पु०	प्रथमपु०							
२८	२१	१५	१०	६	३	१	०						
	२८	२१	१५	१०	६	३	१	०					
		२८	२१	१५	१०	६	३	१	०				
			२८	२१	१५	१०	६	३	१	०			
				२८	२१	१५	१०	६	३	१	०		
					२८	२१	१५	१०	६	३	१	०	
						२८	२१	१५	१०	६	३	१	०

तदित्थं प्रतिशरीरोत्पन्नाष्टाविशतिकलकोशस्योत्तरोत्तरं सप्तसु स्थानेषु संतानात् प्रतिशरीरं चतुरशीतिकलं सप्तसोमकोशं संपद्यते । यथा—५६ षट्पञ्चशत्कलाः पित्र्योंशः ॥ २८ स्वांशः एतयोर्योगः

१ ३ ६ १० १५ २१   २८   ८४

अथ शेषराशिचक्रम् ।

सप्तमपुरुषः	षष्ठपु०	पञ्चपु०	चतुर्थपु०	तृतीयपु०	द्वितीयपु०	प्रथमपु०							
७	६	५	४	३	२	१	०						
	७	६	५	४	३	२	१	०					
		७	६	५	४	३	२	१	०				
			७	६	५	४	३	२	१	०			
				७	६	५	४	३	२	१	०		
					७	६	५	४	३	२	१	०	
						७	६	५	४	३	२	१	०

तदित्थं प्रतिशरीरोत्पन्नाष्टाविंशतिकलकोशस्योत्तरोत्तरं सप्तसु स्थानेषु सतानात् प्रतिशरीरमष्टाविंशतिकलं सप्तसोमकोशमवतिष्ठते । यथा—

२१ एकविंशतिः कलाः पित्र्योंशः ७ स्वांशः एतयोर्योगः
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ =२८

अत्र विप्रतिपद्यते । ज्येष्ठ एवायं निवापः सूयते, उत कनिष्ठेष्वपि न्युप्यते । नाद्यः । ज्येष्ठे मृते वंशविच्छेदापत्तेः, कनिष्ठकृते श्राद्धादिस्वधाकारस्य द्वाराभावेन पितृत्वप्रसक्त्या नैरर्थक्यापत्तेश्च । नाप्यन्त्यः । पितृद्रव्याणां षट्पञ्चाशत्कलानां ज्येष्ठे न्युप्ततया कनिष्ठे निवापाय सामग्र्यभावादिति । तत्र कनिष्ठेष्वपि निवापः सूयते इत्येव सिद्धान्तः श्राद्धतत्त्वसमीक्षायां वैशद्येन निरूपयिष्यते इति ॥ इदमन्यदप्यत्र बोध्यम्-यः खलु प्रतिशरीरमष्टाविंशतिकलः सोमकोशो व्याख्यातः स श्रुतौ श्रद्धाशब्देनाख्यायते । तस्य तरलपदार्थत्वादापोमयत्वं द्रष्टव्यम् । 'श्रद्धा वा आपः"—इति भूयसा श्रवणात् । पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' इति पञ्चाहुतिश्रुतावपि तस्या एव श्रद्धाया आहुतयः क्रमेणोपपाद्यन्ते । श्रद्धाया एव संतानः प्रजा । सप्तसु प्रजासु प्रागुक्तदिशा सन्तानिता सा श्रद्धा तूलतन्तुवच्छ्रद्धामयस्तन्तुर्भवति । तेन प्रजानां तन्तु संज्ञा । तथा च बह्वृचश्रुतौ श्रूयते-यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं नशीमहीति । प्रजा वै तन्तुः । प्रजामेवास्मा एतत् संतनोतीति' एवमेताभिः सप्तभिः प्रजाभिः संधार्यमाणत्वादियं श्रद्धा न पतति, नोत्सीदतीत्यतस्तान्यपत्यान्युच्यन्ते । श्रद्धापतनमेव पितृपतनं नाम । तेन श्रद्धायाः संधारणात् पितरो न पतन्तीत्यतोऽपि तान्यपत्यानि । सप्तैते पुरुषा अष्टाविंशतिकलेनैकेन श्रद्धामयेन तन्तुना संबद्धा न पतन्तीत्ययः स तन्तुरेवापत्यमिष्यते । तन्तुरेवाहिनाः प्रजा इत्यतस्ताः प्रजा अपत्यानि अष्टाविंशतिकलानामेकः पिण्डः सप्तस्वपत्यपुरुषेषु व्यासक्तोऽवतिष्ठते तेनैते सप्त पुरुषाः सपिण्डाः । एकपिण्डयोग एवैतेषां सापिण्ड्यम् ॥ इति सापिण्ड्यविचारः ॥ ८ ॥

९—विद्यार्त्विज्यसम्बन्धौ ।

१० —अथ स्वाध्यायसम्बन्धेनाचार्य-ब्रह्मचारि-परम्परासंप्रविष्टानां पुरुषाणां यः सम्बन्धः स विद्याकृतः एवमार्त्विज्यसम्बन्धेन याज्ययाजकपरम्परासंप्रविष्टानां पुरुषाणां परस्परं यः संबन्धः स यज्ञकृतः ॥ तत्र चोपनीय साङ्ग-संकल्प-सरहस्य-सोपनिषत्कवेदाध्यापके,कुलयाजके चाधिकः सम्बन्धः ॥ ततो हीन-हीनतर-गुणेष्वत्विज्ययाजकेषु च तारतम्येन व्यवस्था ॥ इति विद्यार्त्विज्यसम्बन्धौ ॥ ९ ॥

१०–प्रेतसंसर्गः ।

६१—रोदनं स्पर्शनमलंकरणमनुगमनं वहनं दहनमुदकदानं पिण्डदानं चेत्यष्टौ प्रेतसंसर्गाः भवन्ति । एभिः कृतैः शवगताशुद्धिः संसर्गिणि संक्रमते इति स्थितिः ।। इति प्रेतसंसर्गः ।।१०।।

११–खननदाहौ ।

६२—नामकरणात्प्राक् शिशुमरणे खननमेव कार्यम् न तु दाहः । नामकरणोत्तरं तु वर्षत्रयपर्यन्तमकृतचौलस्य दाहखननयोर्विकल्पः । कृतचौलस्य तु वर्षत्रयमध्येऽपि दाह एव कार्यो न तु खननम् । वर्षत्रयोत्तरं कृतवाग्दानाया अकृतवाग्दानाया वा कन्याया दाह एव कार्यो न तु खननम् ।

६३—तत्र खनने सति विशेषाशौचानुपदेशे सद्यः शौचं कार्यम् । दाहे तु त्र्यहाशौचमिति सामान्यनियमः । यस्यापि वा खननमेव विधिसिद्धं न तु दाहस्तस्यापि यदि बालिश्यादाहं करोति तदा त्र्यहाशौचमेवानुरोद्धव्यं न तु सद्यः शौचम् । दाहस्य त्र्यहाशौचे निमित्तत्वादिति दिक् । इति खननदाहाशौचव्यवस्था ।। इति खननदाहौ ।। ११ ।।

१२–उदकदानम् ।

यत्र खननं तत्रोदकदानादिकं न कार्यम् । दाहे तु कृते तत्साहित्यनियतमुदकदानाद्यप्यनुवर्तते । उपनयनात्प्राग् बालकस्य, तथा विवाहात्प्राक् कन्याया दाहोदकदानादिकं तूष्णीमेव कार्यम् । न तु मन्त्रेण । उपनयनाद्विवाहाच्चोदूर्ध्वं तु सर्वं समन्त्रकं कुर्यात् ।। इति उदकदानम् ।। १२ ।।

१३–निमित्तिसंसर्गः ।

६४—संसर्गो नवधा–एकशय्याशयनमेकासनोपवेशनमेकपंक्ति भोजनमशौचिभाण्डपक्वान्न-भोजनमशौचिसंस्पृष्टान्नभोजनमेकपात्रभोजनमार्त्विज्यमध्यापनमशौचिस्त्रीगमनमिति । उक्तं च देवलेन—

आलापस्पर्शनिश्वासान् सहयानासनाशनात् ।
याजनाद्ध्यापनाद् यौनात् पापं संक्रमते नृणाम् ।। इति

तत्रैकशय्याशयनादिपञ्चविधसंसर्गैरेकैककृतैः स्वल्पकालापनेयमाशौचं संसृज्यते । एक-पात्रभोजनादिभिस्तु चतुर्विधसंसर्गैरधिककालापनेयमाशौचं प्राप्नोतीति दिक् ।। इति निमित्तिसंसर्गः ।। १३ ।।

१४—आशौचतादात्म्यम् ।

(तारतम्यरहस्यम्)

६६—इह हि मातृतः पितृतः आत्मतः सात्म्यतो रसतः सत्त्वतश्चेति पुरुषव्यक्तिः षड्भ्यो *योनिभ्यः संभूताऽस्य संभवति । तत्र यावदियं मातृतः पितृतो रसतश्च संभवतः संभवति, तदवच्छेदेन जन्मनो मरणाद्वा निमित्तात्कस्यांचिद् व्यक्तावुत्पद्यमानमाशौचं योनिसंबन्धाद्, विद्यासंबन्धाद्, यज्ञसंबन्धात्, संसर्गसंबन्धाद्वा परत्र संक्रमते । तच्च संक्रममाणं संबन्धमात्रां पात्रयोग्यतां चापेक्षते । अत्यल्पमात्रे तस्मिन् सम्बन्धसूत्रे सत्यल्पमात्रया संक्रममाणं परव्यक्तौ स्वल्पेनैव कालेनापैति । अथ संबन्धसूत्राधिक्ये सत्यधिकमात्रया संक्रममाणं तदशौचं विलम्बेनापैति । तदित्थमिदमाशौचं सम्बन्धसूत्रतारतम्यनिबन्धनेन निवृत्तिकालतारतम्येन तात्कालिकैकाहपक्षिणीत्र्यहदशाहादिभेदादनेकधा भिद्यते । एवं पात्रयोग्यतातारतम्यादप्याशौचसंक्रमणे तारतम्यमुपजायते । साङ्गसकल्पसरहस्यसोपनिषत्कसर्वशाखवेदविदि, अग्निमति विशिष्टकर्मवति च पुरुषे संक्रममाणमप्याशौचं विलक्षणसंस्कारविशिष्टे तदात्मनि न समासज्जते, पुष्करपलाशे जलबिन्दुवदित्याहुः । ततो न्यूनयोग्यतास्वस्तु च वैशाग्निकर्मनिबन्धनयोग्यतातारतम्यानुरोधेनैव मात्रातारतम्येन संक्रमणात् तात्कालिकैकाहपक्षिणीत्र्यहदशाहादिभेदादनेकधा भिद्यते तदित्थं यत्राधिकमात्रत्वादधिककालव्याप्यमाशौचं संक्रमते तत्रास्य भूतात्मा च सत्त्वात्मा चानेनाऽऽशौचेन संसृज्यते । तस्य सत्त्वात्मस्थमिदमाशौचं यावता कालेन निवर्तते, तत्तृतीयभागकालेन तस्य बाह्याद् रसात्मनस्तदशौचमुपैति तदिदं बाह्यभूतात्मस्थमघं स्पर्शाशौचशब्देन सत्त्वात्मस्थं तु तदघं कर्माशौचशब्देन व्यपदिश्यते । परे त्वाहुः—प्रतिपुरुषमात्मत्रयं भवति—भूतात्मा, क्षेत्रज्ञात्मा, जीवात्मा चेति । तदुक्तं मनुना—

> योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ॥
> यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥ १ ॥
> जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ॥
> येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ २ ॥ इति

तत्रागं रयिरूपस्य भूतभौतिकपिण्डस्याधिष्ठाता प्राणो भूतात्मेत्युच्यते । तत्र भूतभौतिकपिण्डावच्छेदेन समासक्तमघं तु कर्माशौचशब्देन व्यपदिश्यते । तदेतदुभयं वस्तुतो न भिद्यते । केवलमत्र मात्रातारतम्यादधिष्ठानभेदो व्याप्यकालभेदश्चाशौचभेदप्रतिपत्तौ निमित्तं द्रष्टव्यम् । यथा जातीपुष्पेऽधिष्ठितो गन्धः केनचित् प्रक्रमेण गन्धतैलेऽधिष्ठितो भवति, स पुनर्गन्धतैलस्पर्श-

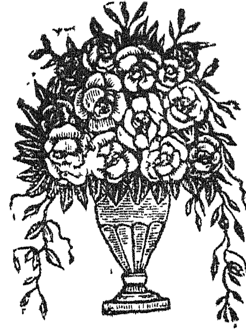
---

* योनिशब्दः स्त्रियां पुंसि च वर्तते ।

वस्तु वायुवस्त्रादिद्रव्यजातेष्वपि संसृज्यते । स हि गन्धो जातीपुष्पे चिराय तिष्ठन् ततोऽल्पेन कालेन गन्धतैलेऽवतिष्ठते । ततोऽप्यल्पेन कालेन स तत्स्पर्शवत्सु वस्त्रादिषु संसक्तो निवर्तते । तदित्थं पुष्पे तैले वस्त्रे च गन्धोत्पत्तेर्भिद्यते निमित्तम्, भिद्यते चाश्रयो भिद्यते चावस्थानकालः, भिद्यते चोपक्रमकालः । तत्र तैलादौ तावद् गन्धस्य पुष्पावयवोऽन्य एवाश्रयो मुख्यः । तैलावयवस्त्वन्य आश्रयो गौणः । पुष्पेऽप्यनयोर्यो गन्धाश्रयः । स निर्गन्धे पुष्पावयवेऽपि समासक्त एवानुभूयते, सोऽन्यस्तस्याश्रयः । गन्धाश्रितभागातिरिक्तोऽपि कश्चन भागः पुष्पस्य जीर्णावस्थायां मुकुलावस्थायां च प्रत्यक्षमगन्धोऽनुभूयते तरुणावस्थायां तूद्भूतो गन्धः सर्वत्राविशेषमुपलभ्यते । तत्र वायुवस्त्रादौ गन्धावयवा एव संक्रमन्ते, न परे पुष्पभागाः । पुष्पमर्दनादिकर्माणि तु परे पुष्पभागा एव संक्रमते, न गन्धावयवा इत्युपक्रमभेदः स्पष्टमुपलभ्यते । स यथा एक एव गन्धोऽन्यत्राधिष्ठितोऽप्यन्यत्रोपसंक्रममाणो दृश्यते, एवमिदं जातकमृतकशरीरस्थमघं परशरीरे भूतात्मनि यथायथं तारतम्येन संक्रमते । तच्च तत्र तत्रान्यथान्यथा संपद्यमानमपि वस्तुतो नातिरिच्यते । अघवस्तुनि भेदाभावात् । तस्माज्जन्माशौचं मरणाशौचं वा, दोषाशौचं, क्रियाशौचं वा, सर्वमिदमभिन्नमनर्थान्तरमेव स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थन्तु भेदेनात्र व्यवहाराः प्रवर्तन्ते इति दिक् । इति आशौचतादात्म्याधिकारः ॥ १४ ॥

६७—पौत्रः प्राणपतेस्तु हीरकसुतो यो देवनाथः सुधीः ।
पौत्रस्तस्य हि वैद्यनाथतनयो राजीवनन्देन च ॥
तातज्येष्ठसहोदरेण गुरुणा य पुत्रवत् पालितः ।
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम् ॥

इत्याशौचसूत्राध्यायो द्वितीयः ॥ २ ॥



अथ तृतीयोऽध्यायः

अथ जन्माध्यायः ।

(१) ६८—अस्मिन् जन्माध्याये सूतिकायाः १ सूतिकापितृकुलस्य २ सूतिकाभर्तुः ३ सूतिकाभर्तृकुलस्य ४ तत्संसर्गिणश्चेति ५ पञ्चाधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ।

(२) ६९—जन्माशौचं, जननाशौचं वृद्ध्याशौचं, शुभाशौचं, सूतकमित्येकार्थाः ।

१—सूतिकाधिकारः ।

(सूतिकाया गर्भस्रावे, पाते, प्रसवे च आशौचम्)

७०—प्रथमादिषु चतुर्षु मासेषु नष्टस्य गर्भस्य योनितो बहिर्भावो गर्भस्राव इत्युच्यते। पञ्चमादिषु चतुर्षु मासेषु नष्टस्य गर्भस्य योनितो बहिर्भावो गर्भपात इत्युच्यते। सप्तमादिषु चतुर्षु मासेषु पुष्टस्य गर्भस्य योनितो बहिर्भावो गर्भप्रसव इत्युच्यते । तदित्थं सप्तमाष्टमयोर्मासयोर्द्वैधं भवति। नष्टगर्भोद्भवे गर्भपातसंज्ञा गर्भच्युतिसंज्ञा च, जीवद्गर्भोद्भवे तु प्रसवसञ्ज्ञेति विशेषः । आदित्यपुराणवचनादिषु क्वचित्पञ्चमषष्ठमासयोरपि गर्भस्रावशब्दः प्रयुक्तो दृश्यते तदैकदेशिकम् ॥ १ ॥

मासेषु	१	२	३	४	स्रावो डिम्भस्य
मासेषु	५	६	७	८	पातो निर्जीवगर्भस्य
मासेषु	७	८	९	१०	प्रसवो जीवितगर्भस्य

७१—तत्र ब्राह्मण्याः सूतिकाया प्रथममासे गर्भस्रावे द्व्यहमाशौचम् । द्वितीयमासे तृतीयमासे वा गर्भस्रावे त्र्यहम्। प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु त्र्यहमिति दाक्षिणात्याः। चतुर्थमासे चतुरहम्। पञ्चममासे गर्भपाते पञ्चाहम्। षष्ठे मासे गर्भपाते षडहम्। तदिदं स्पर्शाशौचं च कर्माशौचं च तदूर्ध्वं वैदिककर्माधिकारः प्रवर्तते ॥ २ ॥

७२—क्षत्रियायाः सूतिकायाः प्रथममासे गर्भस्रावे त्र्यहम्। द्वितीये चतुरहम्। तृतीये पञ्चाहम् प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु चतुरहमिति दाक्षिणात्यानां केचित्। चतुर्थे षडहम्। पञ्चमे तु गर्भपाते सप्ताहम्। षष्ठे मासे त्वष्टाहमाशौचम् ॥ ३ ॥

७३—वैश्यायास्तु प्रथमे मासे गर्भस्रावे चतुरहम्। द्वितीये पञ्चाहम्। तृतीये षडहम्। प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु पञ्चाहमिति दाक्षिणात्यानां केचित्। चतुर्थे सप्ताहम्। पञ्चमे तु गर्भपाते अष्टाहम्। षष्ठे मासे नवाहमाशौचम् ॥ ४ ॥

७४—शूद्रायास्तु प्रथम मासे स्रावे सप्ताहम्। द्वितीयेऽष्टाहम्। तृतीये नवाहम्। प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु अष्टाहमिति दाक्षिणात्यानां केचित्। चतुर्थे दशाहम्। पञ्चमे तु पाते एकादशाहम्। षष्ठे मासे द्वादशाहमाशौचम् ॥ ५ ॥

७५—सप्तमेऽष्टमे वा मासे दोषवशादजीवद्गर्भपातेऽपि मातुः सम्पूर्णाशौचं वक्ष्यमाणवज्ज्ञेयम् ॥ ६ ॥

वर्णभेदेन प्रसूत्याः स्रावपातयोराशौचदिनानि

मासे	१	२	३	४	५	६
ब्राह्मण्याः	२	३	३	४	५	६
क्षत्रियायाः	३	४	५	६	७	८
वैश्यायाः	४	५	६	७	८	९
शूद्रायाः	७	८	९	१०	११	१२

इदं त्वत्र बोध्यम्। द्विविधं तावत् चातुर्वर्ण्यस्य पूर्णाशौचं व्याख्यातम्। यथा—'शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति'। इत्येवं प्रतिवर्णनियताशौचं प्रातिस्विकमेकम्। 'सर्वे वा स्युर्दशाहिनः' इत्येवं प्रत्याकृष्टाशौचं द्वितीयम्। तत्र येषां प्रातिस्विकाशौचं कुलाम्नायसिद्धं दृष्टं तेषामेव क्षत्रियवैश्यशूद्राणामिहापि गर्भस्राव-गर्भपातयोरुक्तरीत्या प्रातिस्विकाशौचं विधीयते। अथ येषां प्रत्याकृष्टाशौचिनां दशाहाशौचमेव पूर्णाशौच कुलाचारप्राप्तं भवेत् तेषामिहापि स्रावपातयोर्ब्राह्मणवदेवाशौचं ज्ञेयम्। पूर्णाशौचानुसारेणैवेहाप्याशौचप्रत्याकर्षात्।

७६—सप्तमेऽष्टमे नवमे दशमे वा मासे गर्भप्रसवे तु ब्राह्मण्याः, क्षत्रियायाः, वैश्यायाश्च सूतिकायाः दशरात्रं स्पर्शाशौचम्। कर्माशौचं तु पुत्रोत्पत्तौ मासम्, कन्योत्पत्तौ चत्वारिंशद्दिनानीति दाक्षिणात्याः। पुत्रोत्पत्तौ विंशतिरात्रम्, कन्योत्पत्तौ मासमिति पैठीनसिः प्राह, तदातिष्ठन्ते

गौडाः। देशाचाराद् व्यवस्था। सच्छूद्राया अप्येयमेव। सच्छूद्रत्वं च स्पृश्यशूद्राणां स्नानदाना-दिपवित्राचरणशीलत्वं विशिष्टगुणयोग्यताशालित्वञ्चेति दिक्॥ ७॥

७७—सामान्यतस्तु शूद्रायाः कन्यापुत्रजनने त्रयोदशरात्रं स्पर्शाशौचम्, कर्माशौचं तु मासमेवेत्याहुः सच्छूद्राया अप्येवमेवेति दाक्षिणात्यानां केचित्।

प्रसवे	स्पर्शाशौचदिनानि	कर्माशौचदिनानि	
प्रसूतीनाम्		पुत्रे	कन्यायाम्
गौडस्त्रीणाम्	१०	२०	३०
दाक्षिणात्यस्त्रीणाम्	१०	३०	४०
असच्छूद्रस्त्रीणाम्	१३	३०	३०

इति सूतिकाधिकारः॥ १॥

२—सूतिकापितृकुलाधिकारः।

(१—पितृगृहे प्रसवादौ)

७८—ऊढाया औरसकन्याया दत्तकन्याया वा पितृगृहे सत्या मासचतुष्टयपर्य्यन्तं गर्भ-स्रावे शयनाशनादिसंसर्गवतां पित्रादिसपिण्डानां यावत्संसर्गमशौचानुवर्तनात् प्रसूतीसमकाल-मेवाशौचम्। संसर्गशून्यत्वे तु मातापित्रोरेकाहः। अन्येषां त्वशौचं नास्ति॥ १॥

७९—तस्या एव पञ्चमषष्ठमासयोर्गर्भपाते पूर्वोक्तसंसर्गवतां पित्रादिसपिण्डानां संसर्गानुरोधात् प्रसूतीसककालमाशौचम्। संसर्गशून्यत्वे तु मातापित्रोरेकरात्रम्। सोदरभ्रातु-रेकाहः, अन्येषां त्वशौचं नास्ति॥ २॥

८०—तस्या एव सप्तमाष्टमनवमदशमेषु मासेषु प्रसवे शयनाशनादिसंसर्गवतां सर्वेषां पित्रादिसपिण्डानां पूर्णाशौचम्। संसर्गशून्यत्वे तु मातापित्रोस्त्रिरात्रम्। भ्रातादिबन्धुवर्गाणामेक-

रात्रम् । पितृव्यादीनामेकाहः, पित्रोरप्येकाहः इति दाक्षिणात्यानां केचित् गौडानां च केचित् । कर्माशौचमेवेदं, स्पर्शाशौचं तु प्रसवे सूतिकातिरिक्तानां नास्ति ।

प्रसूत्याः	असंसर्गिणाम्			संसर्गिणाम्		
	मातापितृ-	भ्रातृ-	सपिण्डानाम्	मातापितृ-	भ्रातृ-	सपिण्डानाम्
स्रावे	॥	०	०	२।३।४	२।३।४	२।३।४
पाते	१	॥	०	५।६	५।६	५।६
प्रसवे	३	१	॥	१०	१०	१०

८१—पितृवेश्मन्यसंस्कृतैव या नारी रजः पश्यति, तस्याः प्रसवे पितुरशौचं यावज्जीवनं नोपशाम्यति ॥ ४ ॥

(२-पतिगृहे प्रसवादौ)

८२—पतिगृहे तु सत्या गर्भस्रावे गर्भपाते प्रसवे वा पित्रादीनामशौचं नास्ति ॥ ५ ॥

इति सूतिकापितृकुलाधिकारः ॥ २ ॥

३—सूतिकाभर्तरधिकारः ।

८३—मासचतुष्टपर्यन्तं गर्भस्रावे पत्युर्लोमनखवापनपूर्वकात् सचैलस्नानाच्छुद्धिः लोमनखवापनमिच्छन्त्येके, नेच्छन्त्येके ॥ १ ॥

८४—पञ्चमषष्ठमासयोर्गर्भपाते पत्युः सचैलस्नानात् प्राक् स्पर्शाशौचम् । कर्माशौचं तु त्रिरात्रं निर्गुणस्य । सगुणस्य तु सूतीभर्तुरेकरात्रं यमः प्राह । अशौचान्ते लोमनखवापनमिच्छन्त्येके, नेच्छन्त्येके ॥ २ ॥

(१-मुख्यभार्यायाः प्रसवादौ)

८५—सप्तमादिमासचतुष्टये तु भार्याप्रसवे सति श्रवणोत्तरं पत्युः सचैलस्नानम् । पुत्रमुखदर्शनात्परं पुनः सचैलस्नानम् । तत्र प्रथमसचैलस्नानात् प्रागेव स्पर्शाशौचं भवति । कर्माशौचं तु पूर्णं दशाहम् । संसर्गे तु सति स्पर्शाशौचमपि दशाहमिति वक्ष्यते ॥ ३ ॥

८६—अत्र स्त्रीजन्मनि स्नानानुपदेशाद् विनैव स्नानं पितुरपि शुद्धिरित्याहुः तेन कन्याजनने पितुः स्पर्शाशौचं नास्तीति सिद्धम्। कन्याजन्मन्यपि पितुः स्नानमिति दाक्षिणात्यानां केचित् कर्माशौचं तु दशाहं भवत्येव ॥ ४ ॥

(२–परपूर्वायाः परंगताया वा भार्यायाः प्रसवादौ)

८७—परपूर्वायाः भार्यायाः प्रसवे सर्ववर्णानां त्रिरात्रम् । असन्निधौ त्वेकरात्रमिति केचित् परपूर्वाः, पुनर्भूः, अन्यपूर्वा, आरूढा, अन्यगता इत्येकार्थाः ॥ ५ ॥

८८—यदि द्विजातेर्गृहाधिकारिणी हीनवर्णा नारी स्यात् सा च तेन भुक्ता प्रसवं गच्छति । तदास्य द्विजातेर्भस्मान्तं सूतकं भवति । यावज्जीवनं तन्नोपशाम्यति ॥ ६ ॥

८९—पतिं त्यक्त्वा समानजातीयोत्कृष्टजातीयपरपुरुषेण संयुक्तायाः पुनर्भ्वाः प्रसवे तस्य स्वसंग्राहकस्य जारपुरुषस्य पूर्वकालिकस्य च पत्युस्त्रिरात्रम् । हीनवर्णगामिन्यास्तु भार्यायाः प्रसवे पत्युः पूर्वस्याशौचं नास्ति ॥ ७ ॥

९०—क्षेत्रजादिषु पुत्रेषु जातेषु मातापित्रोस्त्रिरात्रमित्याहुः । असन्निधौ त्वेकरात्रमिति केचित् ॥ ८ ॥

प्रसूतिकाभर्तुः		
निमित्ते	स्पर्शाशौचम्	कर्माशौचम्
गर्भस्रावे	सचैलस्नानम्	०
गर्भपाते	सचैलस्नानम्	३
पुत्रप्रसवे	सचैलस्नानम्	१०
कन्याप्रसवे	०	१०
क्षेत्रजादिप्रसवे	०	३
परपूर्वायाः प्रसवे	०	३
परंगतायाः प्रसवे	०	३
नीचंगतायाः प्रसवे	०	०

इति सूतिकाभर्त्रधिकारः ॥ ३ ॥

४—सूतिकाभर्तृकुलाधिकारः ।

६१—मासचतुष्टयपर्यन्तं गर्भस्रावे पुत्रस्य, सपत्न्याः, सपिण्डानां च स्नानाच्छुद्धिः 'लोमनखवापनपूर्वकं स्नानमिति' मैथिलाः ॥ १ ॥

६२—पञ्चमे षष्ठे वा मासे गर्भपाते सपत्न्याः सपिण्डानां च स्नानात् प्राक् स्पर्शाशौचम् । कर्माशौचं तु त्रिरात्रम् । सगुणसपिण्डानां सद्यः शौचम् । निर्गुणसपिण्डानामहोरात्रम् । यथेष्टाचरणशीलानां सपिण्डानां त्रिरात्रम् । अथवा सगुणानामेकरात्रं निर्गुणानां त्रिरात्रमिति केचित् ॥ २ ॥

६३—सप्तमेऽष्टमे नवमे दशमे वा मासे गर्भप्रसवे सपिण्डानां शुद्धिव्यवस्था वर्णभेदेन भिद्यते । ब्राह्मणानां दशाहम्, क्षत्रियाणां द्वादशाहम् वैश्यानां सच्छूद्राणां च पञ्चदशाहम् निकृष्टशूद्राणां मासमाशौचम् । सपिण्डाः सप्तमपुरुषावधयः स्ववंश्याः ॥ ३ ॥

६४—सप्तमपुरुषादूर्ध्वं दशमपुरुषं यावत् सकुल्याः । सकुल्यानां त्रिरात्रम् ॥ ४ ॥

६५—सप्तमादूर्ध्वं चतुर्दशपुरुषं यावत्सोदकाः । सोदकानां तु त्रिरात्र पक्षिणी वा । तत्र जन्मनाम्नोर्ज्ञायमानत्वे चतुर्दशपुरुषं यावत् त्रिरात्रमिति दाक्षिणात्याः । दशमपुरुषादूर्ध्वं जन्मनाम्नोर्ज्ञायमानत्वे पक्षिणीति गौड़ाः ॥ ५ ॥

६६—चतुर्दशपुरुषादूर्ध्वमेकविंशतिपुरुषं यावत् सगोत्राः सगोत्राणां तु जन्मनाम्नोः स्मरणे सत्येकाहम् । पक्षिणीति गौड़ानां केचित् स्नानमात्रमिति दाक्षिणात्यानां केचित् । जन्मनाम्नोरविज्ञाने तु आत्मकुलजोऽयमित्येतावन्मात्रज्ञानसत्त्वे स्नानमात्रेण शुद्धः । यथाकथंचिज्ज्ञानसत्वादत्र स्नानात्प्रागाशौचम् । सर्वथा ज्ञानाभावे तु नाशौचम् । एकविंशतिपुरुषपर्यन्तमेवाशौचप्रवृत्तिर्न तदूर्ध्वमिति बहवः ॥ ६ ॥

६७—सर्वं चैतत्प्रकरणे कर्माशौचमेव विधीयते । स्पर्शाशौचं तु नास्ति सपिण्डानां सकुल्यानां सोदकानां सगोत्राणां वा ॥ ७ ॥

१—दत्तकादीनाम् ।

६८—दत्तकस्यासपिण्डकुलाद्गृहीतस्य पुत्रपौत्रादिजनने दत्तकजनयितृसपिण्डानां च पुत्रपौत्रादिजनने दत्तकस्यासपिण्डकुलाद्गृहीतस्यैकाहः इत्यायूह्यम् । एकमातृकयोर्भिन्नपितृकयोर्भ्रात्रोरेकस्य जननेऽपरस्य स्वमातृजात्युक्तं पूर्णमाशौचम् । एकाहमेवाशौचमिति दाक्षिणात्यानां केचित् । पितृतस्योः प्रसवे त्रिरात्रम् । सपिण्डानां तु तयोर्जननादशौचाभावः ॥ ८ ॥

इतिसूतिकाभर्तृकुलाधिकारः ॥ ४ ॥

५—सूतिकासंसर्गाधिकारः ।

(सूतिकासंसर्गे सपिण्ड ना भर्त्तुश्चाशौचम्)

९९—संसर्गाशौचे सत्यस्पृश्यत्वमात्रं भवति न तु कर्मानधिकारः ॥ १ ॥

१००—जननाशौचिनां सूतिकातिरिक्तानां स्पर्शो न प्रतिषिध्यते। प्रसूतीस्पर्शे तु कृते सपत्न्या वा सपिण्डानां वा तदन्येषां वा सर्वेषां स्नानाच्छुद्धिः। स्नानमात्रापनेयस्यास्य तेषु स्पर्शतः संक्रान्तत्वात् ॥ २ ॥

१०१—यदि तु जनकः पिता प्रसूत्याः पत्न्याः संस्पर्शं सूतके करोति तदा तस्यापि प्रसूतीसूतकं यावदस्पृश्यत्वम् । तत्र संस्पर्शो मैथुनसंसर्ग इति केचित्। संसर्गान्तरेष्वपीति बहवः ॥ ३ ॥

१०२—अशौचिनामन्नभोजनैकशय्यासनादिसहवासभूयस्त्वपरिशीलने यावत्तेषां निमित्तिनामशौचं तावदेवैषां संसर्गिणामप्यशौचमनुवर्तते ॥ ४ ॥

१०३ अशौचिगृह्याणामशौचिस्वामिकानां वा द्रव्याणामशौचिस्पर्शशून्यानां संसर्गे तु नाशौचसम्बन्धः, अशौचिस्पर्शे तु द्रव्यशुद्धिप्रकरणोक्ता व्यवस्था द्रष्टव्या ॥ ५ ॥

इति सूतिकासंसर्गाधिकारः ॥ ५ ॥

वर्षे वैक्रमकेऽग्निदृग्ग्रहमहीमाने (१९२३) हि यस्योद्भवः।
श्रावण्याः परतोऽष्टमीतिथिनिशायामे द्वितीयेऽभवत् ॥
अस्मिन् वैक्रमवत्सरे रसाङ्कोर्वी (१९९६) मिते फाल्गुने।
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समं चामिमाम् ॥ १ ॥

इति जन्माध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥



अथ मरणाध्यायः ।

१०५—अस्मिन् मरणाध्याये पुरुषाणां स्त्रीणां विगोत्राणां संसर्गिणां चेति चत्वारोऽधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ।

१०६—मरणाशौचं शवाशौचं मृताशौचं मृतकं प्रेताशौचमित्येकार्थाः ।

(१) पुरुषाशौचाधिकारः ।

आदन्तजननात् सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्, दशरात्रमतः परम्—इत्याहुः ॥

सप्तमो मासो दन्तजननकालः । तृतीयं वर्षं चूडाकालः । मासत्रयाधिकषड्वर्षादूर्ध्वं व्रतबन्धकालः । तेन मरणाशौचविषये सामान्यतश्चत्वारो विभागा उपपद्यन्ते—जन्मारभ्य सद्यः शौचम् । दन्तजननमारभ्यैकरात्रम् । चौलसंस्कारमारभ्य त्रिरात्रम् । व्रतबन्धसंस्कारमारभ्य दशरात्रम्—इति कर्मप्राधान्यवादिनां पक्षः । प्रथममासमारभ्य सद्यःशौचम् । सप्तममासमारभ्यैकरात्रम् । पञ्चविंशमासमारभ्य त्रिरात्रम् । षट्सप्ततितममासमारभ्य दशरात्रमिति कालप्राधान्यवादिनां पक्षः । एषां विभागानां सन्धिस्थानेषु त्रिषु पक्षद्वैविध्यादाशौचद्वैविध्यमापततीत्युत्तरत्र प्रदर्शयिष्यते । अत्र प्रथमद्वितीयतृतीयविभागपर्यन्तं बालाशौचमित्युच्यते । चतुर्थविभागाशौचन्तु प्रौढाशौचम् । किञ्च अत्र प्रथमविभागे सर्ववर्णसाधारणनियमाः । प्रतिज्ञायन्ते द्वितीयतृतीयचतुर्थेषु वर्णभेदेन । तत्रैकदैकरात्रं दशरात्रमित्युपलक्षणं स्वस्ववर्णाशौचकालानाम् । तथा च वर्णभेदेन भिन्ना आशौचकालाः प्रतिविभागं प्रदर्श्यन्ते—

१—ब्राह्मणादीनां सामान्येन नियमाः ।

१—ब्राह्मणानां जन्मतः षष्ठमासं यावन्मरणे भूमिनिखननम् । तत्र सम्बन्धिनां सद्यः शौचम् । [केशनखच्छेदनपूर्वकस्नानाच्छुद्धिरिति गौडाः । अथ सप्तममासं दन्तजननं वारभ्य चतुर्विंशमासपर्यन्तं चौलसंस्कारपर्यन्तं वैकरात्रम् । भूमिनिखननंश्मश्रुकर्म च प्राग्वदिति गौडाः । खननं दहनं वा विकल्पेनेति दाक्षिणात्याः । अथ पञ्चविंशमासं चौलसंस्कारं वारभ्य पञ्चसप्ततितममासपर्यन्तं व्रतबन्धपर्यन्तं वा त्रिरात्रम् । तत्र दहं कृत्वा पिण्डदानम् । द्वितीयदिने त्वस्थिसंचयनं कुर्यादित्येकः] पक्षः । अथवा तृतीयदिने पिण्डदानमस्थिसंचयनं नखकेशच्छेदनं च कृत्वा चतुर्थदिने ब्राह्मणभोजनं कुर्यादित्यन्यः पक्षः । अथ षट्सप्ततितममासं व्रतबन्धं वारभ्य दशरात्रादेशः ॥ १ ॥

२—क्षत्रियाणां षष्ठमासपर्यन्तं दन्तजननान्तं वा सद्यःशौचम्। चतुर्विंशमासपर्यन्तं तदीयचौलकालान्तं चौलसंस्कारान्तं वा द्व्यहम्। पञ्चसप्ततितममासपर्यन्तं तदीयव्रतबन्धकाल-पर्यन्तं वा व्रतबन्धान्तं षडहम्। तदूर्ध्वं द्वादशाहम्॥ २॥

३—वैश्यानां षष्ठमासपर्यन्तं दन्तजननान्तं वा सद्यःशौचम्। चतुर्विंशमासपर्यन्तं तदीयचौलकालान्तं चौलान्तं वा त्र्यहम्। पञ्चसप्ततितममासपर्यन्तं तदीयव्रतबन्धकालपर्यन्तं व्रतबन्धान्तं वा नवाहम्। तदूर्ध्वं पञ्चदशाहम्॥ ३॥

४—निकृष्टशूद्राणां षष्ठमासपर्यन्तं दन्तजननान्तं वा सद्यःशौचम्। चतुर्विंशमासपर्यन्तं पञ्चाहम्। पञ्चसप्ततितममासपर्यन्तं द्वादशाहम्। तदूर्ध्वं मासमाशौचम्॥ ४॥

मरणाशौचदिनानि

निमित्तमासाः		१–६	७–२४	२५–७५	७६
वर्णभेदेन मरणा-शौचदिनानि।	ब्राह्मणानाम्	सद्यः	१	३	१०
	क्षत्रियाणाम्	,,	२	६	१२
	वैश्यानाम्	,,	३	९	१५
	शूद्राणाम्	,,	५	१२	३०

एष च सामान्यादुक्तो नियमः। किन्तु प्रतिविभागमत्र निमित्तान्तरानुरोधेन चाशौचे तारतम्यमुपजायते न त्वविशेषेण सर्वत्र सद्यः शौचादिकं यथोक्तमेवानुवर्तते। तस्मात् प्रति-विभागं तत्तदनुरोधेन यथायथाशौचे विशेषा जायन्ते तेऽत ऊर्ध्वमादितः प्रदर्श्यन्ते त एवानु-रोद्धव्याः॥ इति चतुर्विभागाधिकरणम्॥

२—बालाशौचम्।

१०८—जन्मतः प्रागेव शिशुमरणे मृतजातस्य तस्य सम्बन्धेनाशौचं द्वेधा सम्भाव्यते-मृताशौचं जाताशौचं च। तत्र मृताशौचं कस्यापि नास्तीति नियम्यते। जाताशौचं तु मातुर्दशाहं प्रागुक्तं भवत्येव। सप्येषां तु जननाशौचमपि नास्ति॥

१०९—नालच्छेदात् प्राक् शिशुमरणे जातमृतस्य तस्य सम्बन्धेनाप्यशौचं द्वेधा सम्भाव्यते—जाताशौचं मृताशौचं च। तत्र तावन्मृताशौचं नास्ति। जननाशौचं तु मातुर्दशाहम्। सापत्न्यमातुः पित्रादिसपिण्डानाञ्च त्रिरात्र भवत्येव। अथवा पितुरेव त्रिरात्रम्। सोदरस्यैकरात्रम्। अन्येषां तु सपिण्डानां जननाशौचमपि नास्तीति गौड़ानां केचित्॥

११०—नालच्छेदादूर्ध्वं दशाहात्प्राक् शिशुमरणेऽपि मातुः पितुः सपिण्डानां च मृताशौचं नास्ति। जननाशौचं तु कर्मप्रतिषेधलक्षणं स्पर्शप्रतिषेधलक्षणं च जन्माध्यायोक्तं यथायथं भवत्येव। मातापित्रोर्दशाहम्, सोदरस्य त्रिरात्रम्, अन्येषां तु सपिण्डानां जननाशौचमपि नास्तीति गौड़ानां केचित्॥

१११—दशाहादूर्ध्वं नामकरणात् प्राक् पुत्रमरणे मातापित्रोरेकरात्र मृताशौचम्। त्रिरात्रमिति केचित्॥ सपिण्डानां तु सद्यः शौचम्, सद्यःशौचे सर्वत्र स्नानमात्रेण शुद्धिः। नामकरणं तु दशम्युत्तरकालमेकादशाहे द्वादशाहे वा विहितमतो नामकरणपदं द्वादशरात्रोपलक्षणम्। तेन यद्यपि मासोत्तरं नाम कुर्यात्, तथापि द्वादशाहादेव प्रागिदमाशौचं बोध्यम्। अथाहुः—नामकरणं न कालोपलक्षणम्। तेन द्वादशरात्रे वा मासोत्तरं वा यदैव नाम कुर्यात् तदैव तस्मान्नामकरणात्प्रागिदमाशौचमनुरोध्यमिति दाक्षिणात्यानां केचित्॥

१—दन्तजननात्प्राग् बालमरणे पित्रादीनां विकल्पः।

११२—नामकरणादूर्ध्वं षण्मासात् प्रागजातदन्तमरणे मातापित्रोरेकरात्रम्, जातदन्तमरणे तु त्रिरात्रमिति दाक्षिणात्यानां केचित्। सपिण्डानां तु सद्यःशौचम्॥

११३—षण्मासादूर्ध्वं दन्तोत्पत्तेः प्राक् पुत्रमरणे दाहे खनने वा मातापित्रोस्त्रिरात्रम्। सपिण्डानां तु दाहे सत्येकाहः। खनने तु सद्यःशौचम्। सप्तमे मासे मनुष्याणां दन्तजननं प्रकृत्या सिद्धम्। किन्तु दीपवंशात्कश्चित् प्रागपि दन्ता जायन्ते पश्चाद्वा। तत्रैतस्मिन् वैकारिकेऽपि दन्तजनने तदनुरोधेन प्राग्वन्नियमा भवन्तीति बोध्यम्।

शिशुमरणेऽशौचदिनानि			
	मातुः	पित्रादीनाम्	सपिण्डानाम्
१ जननात् प्राक्	०	०	०
२ नालच्छेदात् प्राक्	०	०	०
३ दशाहात् प्राक्	०	०	०
४ द्वादशाहात् प्राक्	१	१	सद्यः
५ षण्मासात् प्राक्	१	१	सद्यः
६ दन्तजननात् प्राक्	३	३	सद्यः

इति प्रथमविभागाधिकरणम् ।

तृतीयवर्षेऽशौचदिनानि			
	अकृतचूड़मरणे		कृतचूड़मरणे
	मातापित्रोः	सपिण्डानाम्	सर्वेषाम्
ब्राह्मणानाम्	३	१	३
क्षत्रियाणाम्	६	२	६
वैश्यानाम्	६	३	६
शूद्राणाम्	१२	४	१२

२—पञ्चविंशान्मासात्प्राग् बालस्य खननदहनयोर्नियमाः ।

११४—षष्ठमासादूर्ध्वं चतुर्विंशमासपूर्तेः प्राग् बालकमरणे खननमिच्छन्ति गौड़ाः । खननदहनयोर्विकल्पमिच्छन्ति दाक्षिणात्याः । तत्र खनने सत्येकरात्रं ब्राह्मणकुले द्विरात्रं क्षत्रियकुले, त्रिरात्रं वैश्यकुले पञ्चरात्रं शूद्रकुलेऽशौचदिनान्यनुरोध्यानि । वेदाग्निमत्त्वे तु सर्वेषां ब्राह्मणवदेकरात्रम् । अग्निमतामनग्निमतां च सर्वेषां ब्राह्मणवद्दशाहाशौचमनुभवतामिहापि सर्वं ब्राह्मणवदिति परे ।

११५—षष्ठमासादूर्ध्वं चतुर्विंशमासपूर्तेः प्राङ् मृतस्य दहने कृते त्र्यहं ब्राह्मणकुले, षडहं क्षत्रियकुले, नवाहं वैश्यकुले, द्वादशाहं शूद्रकुलेऽशौचं भवति । सत्यग्निदाहे पित्रोरेव त्रिरात्रम्, सपिण्डानां तु एकाहमेवेति केचित् । वेदाग्निमत्त्वे तु सर्वेषां ब्राह्मणवत् त्रिरात्रम् । दशाहाशौचं व्यवहरतां तु सर्वेषामिहापि सर्वं ब्राह्मणवत् ।

११६—यत्तु केचिदत्र दाहकल्पे ब्राह्मणानां त्रिरात्रम्, क्षत्रियाणामेकादशरात्रम् वैश्यानां द्वादशरात्रम्, शूद्राणां विंशतिरात्रमशौचमाहुस्तदनादेयम् । क्षत्रियादिष्वाकस्मिकस्यैतथमाशौचाधिक्यस्यानौचित्यात् ।

षष्ठमासादाचतुर्विंशमासं मरणेऽशौचदिनानि ।		
	खनने	दहने
ब्राह्मणानाम्	१	३
क्षत्रियाणाम्	२	६
वैश्यानाम्	३	९
शूद्राणाम्	५	१२

इति द्वितीयविभागाधिकरणम् ।

११७—तृतीयं वर्षं चूड़ाकालः । किन्तु कुलाचारवशादशक्यत्वाद् वा तृतीयं वर्षमारभ्य व्रतबन्धकालपर्यन्तं कालविकल्पेन यथेच्छं चौलकर्माचरन्ति । तत्रैतस्माच्चौलविधानादाशौचे नियमा विशिष्यन्ते । तथाहि तृतीयवर्षे तावदस्माच्चौलात् प्राङ्मरणे मातापित्रोस्त्रिरात्रं षड्रात्रं

नवरात्रं द्वादशरात्रं वा वर्णभेदेनाशौचमादिशेत् । इतरेषां तु सपिण्डानामेकरात्र, द्विरात्रं, त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वर्णभेदेन स्यात् । तृतीयवर्षे कृतचूडस्य मरणे तु त्र्यहं, षडहं, नवाहं, द्वादशाहं वा वर्णभेदेन सर्वेषां पित्रादिसपिण्डानामाशौचमनुवर्तते । दशाहिनां तु सर्वेषां ब्राह्मणवत् ।

३—तृतीयादूर्ध्वात् कृतचूडस्याकृतचूडस्य च नियमाः ।

११८—अथ तृतीयवर्षादूर्ध्वं व्रतबन्धात् प्राक् कृतचूडस्याकृतचूडस्य वा मरणे तु पित्रादिसपिण्डानां सर्वेषां त्र्यहाशौचं ब्राह्मणकुले, षडहाशौचं क्षत्रियकुले, नवाहाशौचं वैश्यकुले, द्वादशाहाशौचं शूद्रकुले ज्ञेयम् । दशाहिनां तु सर्वेषां ब्राह्मणवत् ।

४—अष्टमाब्दादुपनीतानामुपनीतयोर्विकल्पः

११६—अथ मासत्रयाधिकषड्वर्षाद्यात्मकात् स्वस्वव्रतबन्धकालादूर्ध्वमनुपनीतस्य मरणे द्वैमत्यं भवति । ये तावत् कर्मप्राधान्यमिच्छन्ति, तेषां गौड़दाक्षिणात्यानां त्र्यहं, षडहं, नवाहं, द्वादशाहं वा वर्णभेदेन प्रागवदाशौचं विधीयते । अथ ये कालप्राधान्यमिच्छन्ति तेषां गौड़ानां दाक्षिणात्यानां च सम्पूर्णाशौचं प्रवर्तते । दशाहं ब्राह्मणकुले, द्वादशाहं क्षत्रियकुले, पञ्चदशाहं वैश्यकुले, मासं शूद्रकुले इति । तत्रेत्थं मतभेदे कुलाम्नायात् पारम्पर्याचारतः शिष्टादेशतश्च व्यवस्था । दशाहिनां तु सर्वेषामिहापि ब्राह्मणवत् ॥

पञ्चसप्ततिमासादूर्ध्वमनुपनीतमरणे ।		
	कर्मप्रधानानाम्	कालप्रधानाम्
ब्राह्मणानाम्	३	१०
क्षत्रियाणाम्	६	१२
वैश्यानाम्	६	१५
शूद्राणाम्	१२	३०

इति तृतीयविभागाधिकरणम् ।

(बालाशौचं वृत्तम्)

३—प्रौढाशौचम् ।

(प्रौढानां मृतानामाशौचम्)

१२०—उपनयनं व्रतादेशविधिः । तत्र ब्राह्मणस्य ब्रह्मग्रहः, क्षत्रियस्य धनुर्ग्रहो, वैश्यस्य प्रतोदग्रहः, शूद्रस्य तु वस्त्रयुग्मग्रहो व्रतादेशे मूलम् ।

१२१—उपनयनादूर्ध्वं मरणे सर्वेषां सपिण्डानां स्ववर्णोचितं सम्पूर्णाशौचम् । तच्च ब्राह्मणानां दशाहम्, क्षत्रियाणां द्वादशाहम्, वैश्यानां सच्छूद्राणाञ्च पञ्चदशाहम् । निकृष्टशूद्राणां वर्णसङ्कराणां च मासमाशौचम् । सर्वेषां वा दशाहमेवाशौचम् । प्रतिलोमजाता इह वर्णसङ्कर-शब्देनोच्यन्ते । अनुलोमजातानां तु स्वमातृजात्युक्तं द्वादशाहादिरूपमाशौचम् ।

१२२—'सर्वे वा स्युर्दशाहिन' इति नियममनुरुन्धानानां येषां क्षत्रियाणां कुले दशाहा-शौचमेव कुलाचारसिद्धं तेषां ब्राह्मणवदेवाशौचं जननमरणयोर्ज्ञेयम् ॥ अथ षट्त्रिपदाभिधा-नेन क्षत्रियत्वाभिमानिनां वैश्यानां तथा राजपुत्रपदाभिधानेन प्रसिद्धानां क्षत्रियबन्धूनां तथा देशविशेषे केषांचिच्छूद्राणां च कुले द्वादशाहमेवाशौचं पारम्पर्येण व्यवहारसिद्ध दृश्यते तेषां क्षत्रियजात्युक्ताशौचमेव सुधीभिरुपदेष्टव्यम् । पारम्पर्यसिद्धस्यापि व्यवहारस्यानुरोध्यत्वात्-इति गोकुलनाथामृतनाथादयो मैथिलाः ।

१२३—अथ सोदकानां तु सर्ववर्णानां त्रिरात्रम् । सगोत्राणां तु सर्वेषां सद्यः शौचे स्नानमात्रेण शुद्धिः इति दाक्षिणात्याः । सगोत्राणामेकरात्रमिति केचित् ॥

१२४—कूटस्थमारभ्य सप्तमपुरुषपर्यन्तं सपिण्डाः । ततश्चतुर्दशपुरुषपर्यन्तं सोदकाः समानोदकाः सकुल्या वोच्यन्ते । तत एकविंशपुरुषपर्यन्तं सगोत्रा गोत्रजा वा इत्येकेषां दाक्षिणात्यानाम् ।

१२५—सप्तमपुरुषादूर्ध्वं दशमपुरुषपर्यन्तं सकुल्याः । तदूर्ध्वं जन्मनामस्मृतिपर्यन्तं सोदकाः,तदूर्ध्वं गोत्रजाः । तत्र सकुल्यानां त्रिरात्रम् । सोदकानां पक्षिणी । गोत्रजानां स्नानमात्र-मिति गौडाः ।

	सपिण्डानाम्	सकुल्यानाम्	सोदकानाम्	सगोत्राणाम्
ब्राह्मणानाम्	१०	३	१॥	सद्यः
क्षत्रियाणाम्	१२	,,	,,	,,
वैश्यानाम्	१५	,,	,,	,,
शूद्राणाम्	३०	,,	,,	,,

इति चतुर्थविभागाधिकरणम् ।

शूद्रबालकानां पृथगादेशः ।

१२६—'गायत्र्या ब्राह्मणं निरवर्तयत्, त्रिष्टुभा राजन्यम्, जगत्या वैश्यम्, न केनचिच्छन्दसा शूद्रं निरवर्तयत्' इति श्रुतेर्वर्णच्छन्दोविभागानुसारेण विभज्य येषां धर्मा व्यवस्थाप्यन्ते तेषु वर्णशब्दः प्रवर्तते । द्विविधश्च स धर्मो भवति-श्रौतः स्मार्तश्च । तत्र ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां द्विविधा अप्येते धर्मा भवन्ति, तस्मात्ते वर्णा उच्यन्ते । शूद्राणां तु स्मार्त एव धर्मो विधीयते न श्रौतः । तस्मादेषामापेक्षिकमिष्यते वर्णत्वं चावर्णत्वं च । स यस्मादयं चतुर्थो वर्णोऽवरवर्णश्चाख्यायते तस्मादेषां ब्राह्मणादिवर्णप्रसङ्गेन केचिदाशौचनियमाः प्रागुक्तप्रतिज्ञाख्याताः ॥ अथ यस्मादयमवर्णः केषांचिदिष्टस्तदनुरोधेनैषां शूद्रबालकानामशौचसम्बन्धेन कञ्चिद् विशेषमप्याहुः," स एष उत्तरप्रतिज्ञानुसारेण द्रष्टव्यः ॥

१२७—शूद्रा द्विविधाः—सच्छूद्रा निकृष्टशूद्राश्च । तत्र श्रद्धया द्विजशुश्रूषवः पञ्चयज्ञादिविहितक्रियानिष्ठाः साध्वाचाराः पर्यवदातगुणा विशिष्टयोग्यताशालिनः शूद्राः सच्छूद्राः ते हि द्विजमण्डलीसंस्रवयुक्ताः पात्रादनिरवासिताः स्पृश्याश्चेष्यन्ते । ये तु प्रतिलोमजन्मादिविशिष्टसांकर्यदोषदूषिता ये वान्त्यजान्त्यावसायिदस्युम्लेच्छभेदैश्चतुर्धा विभक्ता यथेच्छाहारविहारा उन्मर्यादा दृश्यन्ते, ते निकृष्टा अस्पृश्याश्च ॥

१२८—सच्छूद्राणामविवाहितमृतानां षष्ठमासपर्यन्तमशौचाभावः । ततः पञ्चमवर्षपर्यन्तं त्रिरात्रम् । ततः षोडशवर्षपर्यन्तं द्वादशरात्रम् । तदूर्ध्वं पञ्चदशरात्रम् ॥

१२९—विवाहितमृतानां तु सच्छूद्राणां षष्ठमासपर्यन्तमशौचाभावः। ततः पञ्चमवर्षं यावत् त्रिरात्रम्। ततः षष्ठवर्षं यावद् द्वादशाहम्। तदूर्ध्वं तु पञ्चदशाहम्॥

१३०—अथ निकृष्टशूद्राणामविवाहितमृतानां षष्ठमासपर्यन्तमशौचाभावः। ततो द्वितीयवर्षपर्यन्तं पञ्चाहः। ततः षोडशावर्षपर्यन्तं द्वादशाहः, तदूर्ध्वं मासमाशौचम्। अथवा षष्ठमासान्तमाशौचाभावः। ततस्तृतीयवर्षपर्यन्तं पञ्चाहः। ततः षष्ठवर्षपर्यन्तं द्वादशाहः। तदूर्ध्वं मासमाशौचमिति केचित्॥ एतां व्यवस्थां नानुमोदन्ते दाक्षिणात्या गौडाश्च केचित्॥

१३१—विवाहितमृतानां तु निकृष्टशूद्राणां षष्ठमासपर्यन्तं सद्यः शौचम्। ततो द्विवर्षपूर्तेः प्राक् खनने पञ्चाहम्। दहने द्वादशाहम्। तृतीये तु वर्षे मातापित्रोर्द्वादशाहम्। सपिण्डानां पञ्चाहम्। ततः षष्ठवर्षपर्यन्तं सर्वेषां द्वादशाहम्। ततः षोडशवर्षपर्यन्तं द्वादशाहं वा मास वेति विकल्पः। षोडशवर्षादूर्ध्वं तु माससमेवेति सिद्धान्तः। एवमेव सर्वेषां शूद्राणामविशेषेणाशौचव्यवस्था बोध्येत्याहुर्बहव इति दिक्॥

	सच्छूद्राणाम्		निकृष्टशूद्राणाम्	
	अविवाहितानाम्	विवाहितानाम्	अविवाहितानाम्	विवाहितानाम्
१ षष्ठमासान्तम्	०	०	०	सद्यः
२ द्विवर्षान्तम्	३	३	५	५ खन० १२ दह०
३ त्रिवर्षान्तम्	३	३	१२	५ सपि० १२ मातापित्रोः
४ पञ्चवर्षान्तम्	३	३	१२	१२
षष्ठवर्षान्तम्	१२	१२	१२	१२
६ षोडशवर्षान्तम्	१२	१५	१२	१२ वा० ३० वा०
७ यावज्जीवनम्	१५	१५	३०	३०

इति शूद्राधिकरणम्।

इति पुरुषाशौचाधिकारः प्रथमः॥ १ ।

२—स्त्र्यशौचाधिकारः ।

१—मातापित्रोर्मरणेऽपत्यादीनाम्

१३२—मातापित्रोर्मरणे दशाहमध्ये मरणश्रवणे सत्यूढायाः कन्यायास्त्रिरात्रम्, दशाहोर्ध्वं वत्सरान्ते कालान्तरे वा मरणश्रवणे पक्षिणी । अतिक्रान्ताशौचमत्रैवानुवर्त्तते ब्राह्मणवचनान्नान्यत्रेति दाक्षिणात्याः इति कन्यानुयोगिकाधिकरणम् ॥ १ ॥

२—कन्यामरणे पित्रादीनाम्

१३३—कन्यास्तु जन्मावधि दन्तोत्पत्तिपर्यन्तं मरणे दाहे खनने वा मातापित्रोरेकाहः । त्रिपुरुषसपिण्डानां सोदरभ्रातुश्च सद्यःशौचम् । अन्येषां त्वशौचं नास्ति ॥ २ ॥

१३४—दन्तोत्पत्तेरूर्ध्वं वर्षत्रयपर्यन्तं कन्यामरणे मातापित्रोस्त्रिदिनम् । त्रिपुरुषसपिण्डानां तु सद्यः शौचम् । अन्येषां त्वशौचं नास्ति ॥ २ ॥

१३५—वर्षत्रयादूर्ध्वं वाग्दानात् प्राक् कन्याया मरणे मातापित्रोस्त्र्यहाशौचम् । त्रिपुरुषसपिण्डानां त्वेकाहः । अन्येषां त्वशौचं नास्ति ॥ ३ ॥

१३६—वाग्दानोत्तरं विवाहात् प्राक् कन्याया मरणे पितृकुले भर्तृकुले च पित्रादीनां सर्वेषामासप्तमपुरुषं सपिण्डानामेकाहः इति दाक्षिणात्याः । त्रिरात्रमिति केचित् ।

१३७—गौडास्त्वाहुः—कन्याया जन्मावधि द्विवर्षाभ्यन्तरेण मरणे सर्ववर्णानां पित्रादिसपिण्डानां सद्यः शौचम् । द्विवर्षोपरि वाग्दानात् प्राग् एकाहः । वाग्दानोत्तरं विवाहात् प्राक् कन्यामरणे भर्तृकुले पितृकुले च त्रिरात्रम् । यत्र तु वाग्दानं न जातं तत्र द्विवर्षानन्तरं विवाहपर्यन्तमेकाहोरात्रम् । दाहकर्तुस्त्वत्रापि त्र्यहाशौचमेवेत्याहुः । अयमेव पक्षः सम्मतो मैथिलानाम् । तत्र देशाचाराद् व्यवस्था ।

१३८—विवाहोत्तरं तु पतिगृहे सन्निधिगृहे वा मरणे मातापित्रोः सापत्नमातुः सोदरभ्रातुश्च त्रिरात्रम् । भ्रातुः पक्षिणीति केचित् । एकाश्रमवासिनां वैमात्रेयभ्रातृपितृव्यतत्पुत्रादीनां त्वेकाहः । पितुर्भिन्नाश्रमवासिनां तु भ्रात्रादीनामाशौचं नास्ति । पित्रादीनामप्यशौचं नास्तीति केचित् । भर्तृकुले तु स्ववर्णोचितं सम्पूर्णाशौचम् ।

१३९—दत्तकन्यायाः पितृगृहे मरणे प्रसवे च पित्रोः संसर्गशून्ययोस्त्रिरात्रम् । सापत्नमातुः, सापत्नभ्रातुः, सोदरभ्रातुश्च त्रिरात्रम् । इतरेषां तु संसर्गशून्यानां बन्धुवर्गाणामेकरात्रम् ।

संसर्गिणां तु सर्वेषां पूर्णाशौचम्। एतत् सर्वं सर्ववर्णसाधारणम्। बन्धुवर्गास्तु एकक्रियापन्ना एकाश्रमस्था भ्रातृवैमात्रेयपितृव्यतत्पुत्रादयो भवन्ति। इति कन्याप्रतियोगिकाधिकरणम्।

३—भार्यामरणेऽपत्यादीनाम्

१४०—भार्यामरणे पत्युर्दशाहः। परपूर्वायास्तु भार्याया मरणे सर्वेषां वर्णानां त्रिरात्रम्। समानजातीयोत्कृष्टजातीयपुरुषान्तरसंगृहीतस्वभार्यामरणे सर्वेषां त्रिरात्रम्। हीनवर्णोपभुक्तायास्तु मरणे नाशौचम्।

४—परपूर्वाया भार्याया मरणे

१४१—विवाहिता स्त्री स्वतन्त्रा भूत्वा यदि पाणिग्राहकादन्यं पुरुषमाश्रयति तदा यं यमाश्रयति तस्य तस्य पुरुषस्य तस्यां मृतायां त्रिरात्रमाशौचं भवति। किन्त्वस्य स्वयंग्राहकपुरुषस्य ये कुलजाताः सपिण्डादयस्तेषामाशौचं तत्र नास्ति। यदि च पाणिग्राहकेण तस्याः संगमः कृतस्तदा तस्याः परपुरुषाश्रयणेऽपि पाणिग्राहकगोत्रमेव तिष्ठति न स्वयंग्राहकगोत्रमनुवर्तते। किन्तु यदि तस्यास्तेन सङ्गमो न कृतस्तदा येनान्येन प्रथमं सङ्गता स्यात् तत्सगोत्रा सा संपद्यते। एवमपि तस्य स्वयंग्राहस्य त्र्यहमेव तत्राशौचं न तु सगोत्रत्वादशौचवृद्धिः।

१४२—अथ पाणिग्रहणे वृत्ते सप्तपदीसमारोहणे त्वसमाप्ते यदि बलादपहृता स्यात् तदा यावदेषा न प्रसूते तावत् पितृगोत्रावतिष्ठते। प्रसवानन्तरन्तु सा पौर्विकपाणिग्रहस्थाने पाणिग्राहकस्य स्वामिनः सगोत्रा भवति न तु बलात्कारेण हर्तुर्गोत्रं सा गृह्णाति। तेन तस्या मरणेऽपहर्तुस्त्रिरात्रमेवाशौचं स्यात्। इति भार्याधिकरणम्। इति स्त्र्यशौचाधिकारः॥ २॥

३—विगोत्राधिकारः

१४३—पुरुषस्त्र्यधिकारयोः सपिण्डसकुल्यसोदकगोत्राणां सगोत्रत्वमेवापेक्ष्याशौचविधयः प्रतिज्ञाताः। अथोत्तरयोर्विगोत्रत्वमपेक्ष्य वक्तव्याः। तत्र विगोत्राः सप्तभिर्निमित्तैराशौचभाजो भवन्ति योनिसम्बन्धात्, विद्यासम्बन्धात्, प्रीतिसम्बन्धात्, सादेश्यसम्बन्धात्, कर्मसम्बन्धात्, धर्मसम्बन्धात्, स्पर्शसम्बन्धाच। तत्र योनिसम्बन्धाद्विसम्बन्धाच्चासन्नविगोत्राः सम्बन्धिनो बन्धवश्चोच्यन्ते। तदितरे तु संसर्गिणः। तस्मादधिकारद्वैविध्येन विभज्य ते निरूप्यन्ते।

१४४—(१) भ्रातृभगिन्योः। (२) मातुलभागिनेययोः। (३) मातामहदौहित्रयोः। (४) जामातृश्वशुरयोः। (५) भामश्यालकयोः। (६) पितृष्वसृभ्रातृव्ययोः। (७) मातृष्वसृभागि-

नेययोः । (८) पुंबन्धूनाम् । (९) स्त्रीबन्धूनाम् । (१०) दत्तकप्रतिग्रहीत्रोः । (११) गुरुशिष्ययोः । (१२) सहाध्यायिनोश्च । परस्परमशौचाधिकरणानि द्वादश ।

१—भगिनी-मातुल-मातृश्वसृ-श्वशुरादीनां विगोत्राणां योनिसम्बन्धिनामाशौचम्

१४५—भ्रातृभगिन्योः परस्परगृहमरणे परस्परस्य त्रिरात्रम् । गृहान्तरमृतौ तु परस्परस्य पक्षिणी । सर्वत्र भगिन्यां मृतायां पक्षिणीत्येके ।

१४६—मातुलमरणे भगिन्यपत्यस्य पक्षिणी । उपकारादिसम्बन्धविशेषे स्वगृहस्थे वा मृते त्रिरात्रम् । पैतृष्वस्रीयगृहे मातुलपुत्रस्य मरणे पैतृष्वस्रीयस्य त्रिरात्रम् । अन्यथा त्वेकाहः । मातृवैमात्रेयस्य मरणे भागिनेयस्याहोरात्रम् । मातुलान्या मरणे भर्तृभगिन्यपत्यस्य पक्षिणी । उपनीतभागिनेयमरणे मातुलस्य मातुलभगिन्याश्च त्रिरात्रम् । अनुपनीतभागिनेयमरणे तु मातुलस्य मातुलभगिन्याश्च पक्षिणी । सर्वत्र भागिनेयमरणे पक्षिणीत्येके ।

१४७—मातामहमरणे दुहित्रपत्यस्य त्रिरात्रम् । मातामहीमरणे दुहित्रपत्यस्य पक्षिणी । उपनीतदौहित्रमरणे मातामहस्य मातामह्याश्च त्रिरात्रम् । अनुपनीतदौहित्रमरणे तु पक्षिणी । सर्वत्र दौहित्रमरणे पक्षिणीत्येके ।

१४८—श्वशुरयोर्मरणे सन्निधौ सति जामातुस्त्रिरात्रम् । एकरात्रमित्येके । सन्निधिस्त्वेक-गृहस्थितिः । असन्निधौ त्वेकग्रामस्थत्वे पक्षिणी । ग्रामान्तरस्थयोस्तु तयोर्मरणे रात्रिमात्रमहोरात्रं वा । श्वशुरयोर्मरणे निर्गुणजामातुः पक्षिणीत्यन्ये । जामातृमरणे तु श्वशुरयोरेकाहः, सद्यः शौचं वा ।

१४९—श्यालकमरणे भगिनीभर्तुरेकदिनमात्रम् । अहोरात्रमित्येके । श्यालकसुतमरणे तु स्नानमात्रम् ।

१५०—पितृष्वसुर्मरणे भ्रात्रपत्यस्य पक्षिणी । भ्रातृपुत्रगृहे तु पितृष्वसुर्मरणे भ्रातृपुत्रस्य त्रिरात्रम् ।

१५१—मातृष्वसुर्मरणे स्वस्रपत्यस्य पक्षिणी । भगिनीपुत्रगृहे तु मातृष्वसुर्मरणे भगिनी-पुत्रस्य त्रिरात्रम् ।

१५२—पितृष्वस्रीय-मातृष्वस्रीय-मातुलपुत्रा बान्धवाः । ते चैते त्रेधा—आत्मबान्धवाः, पितृबान्धवाः मातृबान्धवाश्चेति । तथा च पितृष्वसुः पुत्रो, मातुःष्वसुः पुत्रो, मातुलपुत्रश्चेत्यात्म-बान्धवाः । पितामहभगिनीपुत्रः, पितामहीभगिनीपुत्रः, पितामहीभ्रातृपुत्रश्चेत्येते पितृबान्धवाः । मातामहभगिनीपुत्रो, मातामहीभगिनीपुत्रो, मातामहीभ्रातृपुत्रश्चेत्येते मातृबान्धवाः । तत्रात्म-

बन्धुत्रयमरणे पितृबन्धुत्रयमरणे च सर्ववर्णानां पक्षिणी। मातुलपुत्रे मृते एकरात्रमित्येके। मातृबन्धुत्रयमरणे तु सर्ववर्णानां पक्षिणी वाऽहोरात्रं वेति विकल्पः।

१५३—पितृष्वस्रादिकन्यानां विवाहितानां मरणे सत्येकाहः।

१५४—दत्तकपुत्रमरणे पूर्वापरपित्रोस्त्रिरात्रम्। सपिण्डानां त्वेकाहः। पूर्वापरपित्रोर्मरणे दत्तकस्य दशाहम्। देशान्तरस्थे तु त्रिरात्रम्। दत्तकपुत्रस्यासपिण्डकुलाद् गृहीतस्य पुत्रपौत्रादीनां मरणे सपिण्डानामेकाहः। सपिण्डे तु पुत्रीकृते सपिण्डानां दशाह एव।

१५५—क्षेत्रजादिष्वेकादशविधेषु पुत्रेषु मृतेषु मातापित्रोस्त्रिरात्रम्। क्षेत्रजादीनामपि मातापितृमरणे त्रिरात्रम्।

१५६—एकमातृकयोर्भिन्नपितृकयोर्भ्रात्रोरेकस्य मरणे परस्य स्वमातृजात्युक्तं पूर्णाशौचम्। पितुस्तु तयोर्मरणे त्रिरात्रम्। तत्सपिण्डानां तयोर्मरणे एकरात्रमाशौचम्।

१५७—प्रथममन्येनोढ़ा तेनैव जनितपुत्रा च सा पुत्रसहितैवान्यमाश्रिता पश्चात्तेनापि जनितपुत्राभूत्। तत्र तयोः पुत्रयोर्यथासम्भव मरणे द्वितीयपुत्रस्य यः पिता तस्य त्रिरात्रम्। तत्सपिण्डानामेकरात्रम् द्वितीयपुत्रस्य यः पिता तस्य मरणे तु तथाविधपुत्रयोरपि त्रिरात्रम्। तथाविधपुत्रयोस्तु परस्परं मरणे प्रसवेऽपि वा मातृजात्युक्ताशौचम्॥ इत्थं योनिसम्बन्धिनो विगोत्रा व्याख्याताः॥ १॥

२—गुरुशिष्यादीनां परस्परमाशौचम्।

१५८—आचार्यमरणे तत्संस्कारकर्तुः शिष्यस्य दशरात्रम्। यस्तु संस्कारं न करोति तथाविधस्य शिष्यस्य त्रिरात्रम्। आचार्यपत्निमरणे, आचार्यपुत्रमरणे च गुरुकुलस्थितस्य शिष्यस्य त्रिरात्रम्। समावर्तनोत्तरं स्वगृहस्थस्य शिष्यस्य तयोराचार्यपुत्रपत्न्योर्मरणे एकाहः। गुर्वङ्गना-मरणे पक्षिणीत्यप्याहुः।

१५९—उपनीय किञ्चिद्वेदाध्यापके, अनुपनीय सम्पूर्णवेदाध्यापके च गुरौ मृते पक्षिणी। तथाविधगुरुपत्न्याञ्च मृतायां पक्षिणी।

१६०—यत्किञ्चिदध्यापकोपाध्यायमरणे शिष्यस्यैकरात्रम्। तादृशोपाध्यायपत्न्याञ्च मृतायामेकरात्रम्। तदुपाध्यायपुत्रे च मृते एकं दिनमात्रं रात्रिमात्रं वा।

१६१—उपनीयाध्यापक आचार्यः, वेदैकदेशाध्यापक उपाध्यायः।

१६२—आचार्यगृहस्थितशिष्यमरणे आचार्यस्य त्रिरात्रम्। उपनीय वेदैकदेशमध्यापितस्य, अनुपनीय सम्पूर्णशाखामध्यापितस्य शिष्यस्य मरणे उपाध्यायस्यैकाहोरात्रम्।

१६३—वेदे सहाध्यायिनोर्मरणे पक्षिणी। यत्किञ्चित्पाठे सहाध्यायिनोर्मरणे एकाहः। समानब्रह्मचर्ये एकस्माद् गुरोरधीयाने मृते इतरस्यैकरात्रम्। समानब्रह्मचर्ये भिन्नाद् गुरोरधीयाने अपरस्यैकदिनमात्रं रात्रिमात्रं वा। इत्थं विद्यासम्बन्धिनो विगोत्रा व्याख्याताः॥ २॥ इति विगोत्राधिकारः॥ ३॥

४—संसर्गाशौचाधिकारः।

(१- मित्रमरणे)

१६४—सन्निधिवासि मित्रं यद्गृहे म्रियते तद्गृहस्थस्य त्रिरात्रम्। अन्यादृशं मित्रं यद्गृहे म्रियते यस्य पक्षिणी। स्वमित्रस्य स्वगृहादन्यत्र मरणे एकरात्रम्॥ इत्थं प्रीतिसम्बन्धिनो विगोत्रा व्याख्याताः (३)

(२-श्रोत्रियादिमृतौ स्वगृहेऽन्यमरणे च)

१६५—श्रोत्रियो यद्गृहे म्रियते तस्य गृहस्थस्य त्रिरात्रम्। अश्रोत्रिये स्वगृहे मृते-करात्रम्। भगवानङ्गिरास्त्वाह—

गृहे यस्य मृतः कश्चिदसपिण्डः कथंचन,
तस्याप्यशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रमिति निश्चयः॥

विकल्पे त्वाचारः प्रमाणमाप्तवचनं च। अथ एकग्रामे श्रोत्रियमरणे ग्रामवासिनामेक-रात्रम्। इत्थं सादेश्यसम्बन्धिनो विगोत्रा व्याख्याताः॥ ४॥

(३-ऋत्विगादिमरणे)

१६६—यद्गृहे ऋत्विङ् म्रियते तस्य यजमानस्य त्रिरात्रम्। अन्यत्र मृते त्वेकरात्रम्। सदा याज्ये यजमाने मृते याजकस्य त्रिरात्रम्॥ इत्थं कर्मसम्बन्धिनो विगोत्रा व्याख्याताः। (५)

(४- महाराजमरणे)

१६७—स्वतन्त्रस्य महाराजस्य स्वकर्मस्थस्य मरणे प्रजानामेकाहोरात्रम्। अस्वकर्मस्थे राजनि मृते एकं दिनमात्रं रात्रिमात्रं वा॥ इति धर्मसम्बन्धिनो विगोत्रा व्याख्याताः॥ (६)

(५-आशौचिनामन्नभोजनादौ)

१६८—आशौचिनामन्नभोजनैकशय्यासनादिसहवासभूयस्त्वपरिशीलने यावत्तेषां निमित्तिनामशौचं तावदेवैषां संसर्गिणामप्यशौचमनुवर्तते। अशौचिगृह्याणामशौचिस्वामिकानां

वा द्रव्याणां संसर्गे तु नाशौचसम्बन्धः । इत्थमङ्गस्पर्शतः सम्बन्धिनो विगोत्रा व्याख्याताः ॥(७)
इति संसर्गिविगोत्राः ।

सप्तानाम येषां विगोत्रत्वा विशेषेऽपि योनिसंबन्धिनां विद्यासम्बन्धिनाञ्चासन्न विगोत्रत्वम्,
इतरेषां तु संसर्गित्वम् इत्येवं द्वेधाधिकारो विभज्यते इति बोध्यम् । इति संसर्गाशौचाधिकारः । ४

१६९—आद्या दक्षिणकालिका भगवती श्यामा कुले देवता
स्वाम्नायोऽपि च दक्षिणः शिवपथः स्मार्तोऽस्ति यस्यान्वये ॥
दीक्षा यस्य शिवागमे शिवतमे धर्म्मे च निष्ठाऽधिका
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम् ॥ १ ॥

इति मरणाध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

५-अथोत्तरक्रियाध्यायः ।

१७०—तत्र रोदनं स्पर्शमलङ्करणमनुगमनं वहनं दहनमुदकदानम् पिण्डदानं चेत्यष्टा-वुत्तरकर्माणि भवन्ति । अत्रापि दहनं द्वेधा–शवदहनं प्रतिकृतिदहनञ्च । तदित्थं नव कर्माणि-तेषामेकैकं कुर्वतो वैलक्षण्येनाशौचमनुवर्तते इत्यतस्तद्विविच्यते ।

१—रोदनाधिकारः ।

(रोदने आशौचम्)

१७१—शूद्रे मृतेऽस्थिसञ्चयनकालाभ्यन्तरे तद्गृहे गत्वाऽश्रुनिपातं कुर्वतो द्विजस्य त्रिरात्रम् । स्थानान्तरे त्वश्रुनिपातं कुर्वतोऽहोरात्रम् । शूद्रस्य तु सर्वत्र नक्तेन शुद्धिः ।

१७२—शूद्रे मृतेऽस्थिसञ्चयनकालादूर्ध्वं मासाभ्यन्तरे तद्गृहेऽश्रुपातने द्विजस्याहोरात्र-मशौचं सचैलस्नानं च । शूद्रस्य तु सर्वत्र रोदने नक्तेन शुद्धिः ।

१७३—मृतशूद्रबान्धवैः सह रोदनहितविलापमात्रे ब्राह्मणस्याहोरात्रम् ।

१७४—अस्थिसञ्चयनकालस्तु पूर्णाशौचे ब्राह्मणस्य चतुर्थाहः । क्षत्रियस्य षष्ठाहः । वैश्यस्याष्टमाहः । शूद्रस्य दशमाहः । त्र्यहाशौचे तु सर्वेषां द्वितीयाहः । अस्थिसञ्चयनदिनेऽत्र तेषां तेषामस्पृश्यता निवर्तते । असति विशेषाभिधाने कर्माशौचत्रिभागकालेनास्पृश्यतानिवृत्तेः । सिद्धान्तात् ।

१७५—अथ वैश्यक्षत्रियगोगृहे रोदने द्विजस्य द्व्यहेन शुद्धिः । शूद्रस्य नक्तेनैव शुद्धिः ।

१७६—विप्रगृहेऽस्थिसञ्चयनात् पूर्वं रोदने द्विजस्यैकाहेन शुद्धिः । शूद्रस्य तु नक्तेन ।

॥ इति रोदनाधिकारः ॥ १ ॥

१—एतदधिकारोक्ताः सिद्धान्ता शुद्धितत्त्वे प्रतिज्ञाताः ।

२—स्पर्शनाधिकारः ।

(स्पर्शने आशौचम्)

१७७—दिवा शवस्पर्शे नक्षत्रदर्शनाच्छुद्धिः । रात्रौ शवस्पर्शे सूर्यदर्शनाच्छुद्धिः ।

१७८—असजातीयशवस्पर्शे शवजात्युक्ताशौचमनुवर्तते ।

इति स्पर्शनाधिकारः ॥ २ ॥

३—अलङ्करणाधिकारः ।

(असजातीयशवस्पर्शे)

१७६—स्नानादिविधानं सिन्दूराद्यर्पणं रथिसम्पादनं चेत्येतत् सर्वमलङ्करणविभागे गण्यते ।
१८०—असपिण्डालङ्करणे ज्ञानतः पादकृच्छ्रम् । अज्ञानादुपवासः अशक्तौ स्नानमात्रम् ।

इत्यलङ्करणाधिकारः ।

४—अनुगमनाधिकारः ।

१८१—सपिण्डशवानुगमने दोषो नास्ति । असपिण्डेऽप्यनाथक्रियायां दोषो नास्ति ।

१८२—तुल्यवर्णस्योत्कृष्टवर्णस्य वा शवस्यानुगमने सचैलं स्नात्वाऽग्निं स्पृष्ट्वा घृतं प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामशतं कुर्यात् । हीनवर्णशवानुगमने तु क्षत्रिये एकाहः । वैश्ये पक्षिणीति दाक्षिणात्याः । द्व्यहमिति गौडाः शूद्रे त्रिरात्रम् स्नानादिकं च प्राग्वत् । प्रमादाच्छूद्रशवानुगमने ब्राह्मणस्य सचैलस्नानाग्निस्पर्शघृतप्राशनैः शुद्धिः ।

इत्यनुगमनाधिकारः ।

५-६—वहनदहनाधिकारौ ।

१८३—यदि वहनमात्रं कुर्यात् न दहनम्, यदि वा दहनमात्रं कुर्यान्न वहनम्; यदि वोभयं कुर्याद्वहनं दहनं च त्रेधाऽप्येवं तुल्यमेवाशौच प्रवर्तते ।

१८४—मातुलमातृष्वसृपितृष्वसृप्रभृतीनां यदि वहनं दहनमुभयं वा करोति तच्च स्नेहेनास्नेहेन वा करोति तदा सर्ववर्णानां त्रिरात्रमेवाशौचम् न तु पक्षिणी, अहोरात्रम्, एकरात्रं वा ।

१८५—मातुलादिसम्बन्धिभिन्नानां तु सवर्णानां स्नेहेन निर्हारं कुर्वाणानां संस्रवविशेषाभावे तद्गृहवासाभावे तदन्नभोजनाभावे च सति निर्हरणमात्रेणैकाहमाशौचम् । तद्गृहवासाभावे तदन्नभोजनाभावेऽपि संस्रवविशेषसत्त्वे त्रिरात्रम् । संस्रवविशेषाभावे तदन्नभोजनाभावेऽपि तद्गृहवाससत्त्वे त्रिरात्रम् । विविक्ततद्गृहवाससत्त्वे त्वहोरात्रम् । आशौचिकुलान्नभोजने तु तद्गृहवासेऽप्यतद्गृहवासेऽपि तत्तुल्याशौचं दशाहादि भवति । भृतिग्रहणलोभं विना स्कन्धदानं स्नेहेन निर्हारः ।

१८६—भृतिग्रहणलोभात् सवर्णनिर्हारं कुर्वाणस्य मृतकजात्यशौचं दशाहादिकमनुवर्तते ।

१८७—स्नेहेन विजातीयनिर्हारं कुर्वाणस्य मृतकजात्यशौचं दशाहादिकं स्यात्। भृतिग्रहणेन लोभाद्विजातीयनिर्हारं कुर्वाणस्य तु मृतकजात्यशौचाद् द्विगुणमाशौचं प्रवर्तते।

१८८—अनाथस्य तु सवर्णस्य धर्मबुध्या निर्हारे सद्यः शौचम्। तत्र सचैलस्नानाग्निस्पर्शघृतप्राशनैः प्राणायामशतोत्तरैः शुद्धिः। धर्मार्थमनाथसवर्णनिर्हरणादावपि मातुलादिसम्बन्धे सति त्रिरात्रमेवाशौचम्, न तु सद्यः शौचं स्यात् असम्बन्ध एव वोढुः सद्यः शौचचम्। सम्बन्धे तु सति वोढुस्त्रिरात्रमिति पैठीनसिना नियमितत्वात्।

१८९—दहनं कुर्वाणस्याप्येतत्सर्वं यथावज्ज्ञेयम्। चितायां करीषेन्धनदानं दहनम्। यस्तु चिताधूमं सेवते तस्य स्नानाच्छुद्धिः।

इति वाहदाहाधिकारः।

७—प्रतिदहनाधिकारः।

६ (प्रतिकृतिदहने पुत्र-सपिण्डादीनामाशौचम्)

१९०—दशाहमध्ये अपिताग्नेरस्थिदाहे प्रतिकृतिदाहे वा सर्वसपिण्डानां शेषदिवसैरेव शुद्धिः। दशाहादूर्ध्वं तु आहिताग्नेरस्थिदाहे प्रतिकृतिदाहे वा सर्वसपिण्डानां दशाहाद्याशौचं स्यात्।

१९१—अनाहिताग्नेस्तु-अस्थिदाहे पर्णशरदाहे च पत्नीपुत्रयोः पूर्वमगृहीताशौचयोर्दशाहादिकं पूर्णाशौचम्। गृहीताशौचयोस्तु पत्नीपुत्रयोः संस्कारकालेऽपि त्रिरात्रम्। पत्नीसंस्कारे पत्युरप्येवम्। सपत्नीसंस्कारे सपत्न्या अप्येवम्।

१९२—अन्यसपिण्डानां तु पूर्वमगृहीताशौचानामनाहिताग्निसंस्कारकाले त्रिरात्रम। पूर्वगृहीताशौचानां तु सपिण्डानामनाहिताग्निसंस्कारकाले स्नानमात्रम्।

इति प्रतिदहनाधिकारः।

८,९ उदकदान—पिण्डदानाधिकारौ।

(उदकदानपिण्डदानयोरशौचं प्रायश्चित्तं च)

१९३—उदकदानं पिण्डदानं चेत्यौर्ध्वदेहिकं कर्म। असम्बन्धे सत्यौर्ध्वदेहिकक्रियाकरणे द्विविधं कल्मषं संजायते—अघं च, एनश्चेति। तत्राघस्याशौचकालेन शुद्धिर्भवति। एनसस्तु

दुरितदुष्कृतादिपर्यायस्य विशिष्टव्रतादिपुण्यकर्मकरणादपनोदनं भवति । अतस्तत्रोभयमादिश्यते—अशौचशुद्धिश्च प्रायश्चित्तं चेति । तत्र प्रायश्चित्तं यथा—स्वस्मादुत्कृष्टानां सर्ववर्णानामौर्ध्वदेहिक-क्रियाकरणे मृतकजातीयमाशौचं प्रवर्तते । तदशौचनिवृत्तौ च कृच्छ्रत्रयं कुर्यात् ।

१६४—स्वस्मान्निकृष्टानां सर्ववर्णानामौर्ध्वदेहिकक्रियाकरणे मृतकजातीयमाशौचं भवति । तन्निवृत्तौ च कृच्छ्रत्रयं द्विगुणं चतुर्गुणं वा वर्णनिकृष्टतातारतम्येन कुर्यात् । अशौच-शुद्धिप्रकरणे प्रसंगादियमत्र पातकशुद्धिर्व्याख्यातेति दिक् । इत्युदकपिण्डदानाधिकारः ।

१६५—शाण्डिल्यासितदेवलप्रवरकः शाण्डिल्यगोत्रः सुधी-
श्छन्दोगः पथि कौथुमे चरति यो वेदस्य सामात्मनः ॥
कृत्यं गोभिलसूत्रतो हि कुरुते योनाहिताग्निर्द्विजः
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समर्थामिमाम् ॥ १ ॥

इत्युत्तरक्रियाध्यायः पञ्चमः ॥ ५ ॥

६—अथ दोषाशौचाध्यायः ।

१६६—अत्राध्याये संसर्गदोषाधिकारः, आत्मीयदोषाधिकारः, कालदोषाधिकारः, रजोदोषाधिकारः—इति चत्वारोऽधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ।

१६७—अन्यपूर्वागृहे यस्य भार्या स्यात्तस्य नित्यशः ।
आशौचं सर्वकार्येषु गृहे भवति सर्वदा ॥ १ ॥
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ २ ॥
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ।
श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत् ॥ ३ ॥

१—संसर्गदोषान्नित्याशौचम् ।

१६८—परपूर्वा पाणिगृहीता यस्य द्विजातेर्गृहाधिकारिणी भवति तस्य होमदानप्रतिग्रहादिफलसिद्धिप्रतिबन्धकं सार्वकालिकमशौचं वाच्यम् ।

इति संसर्गदोषान्नित्याशौचम् ।

२—आत्मीयदोषान्नित्याशौचम् ।

१९६—यः कर्मकरणादावसामर्थ्यप्रयोजकदीर्घरोगेण सर्वदा ग्रस्तः स्यात् । योऽर्थसंग्रहप्रवणो लोभादात्मानं पुत्रदारान् धर्मकृत्यं च परिपीडयन्नर्थान् प्रचिनोति । यः सर्वदा ऋणग्रस्ततया नित्यं धनिकासेधितः स्यात् । यो उपनयनादिसंस्कारहीनः स्यात् । यो गायत्रीरहितः स्यात् । यो भार्यावशंवदतया गुरुनिर्भर्त्सकः स्यात् । यो कार्यगतचित्ततया नित्यकर्माद्युपेक्षकः स्यात् । यः परायत्ततया निजावश्यकधर्मकर्मसु नित्यमलब्धावसरः स्यात् । यो वा श्रद्धाविहीनः स्यात् । यो नित्यं दानपराङ्मुखः स्यात् । ईदृशानां स्वविधेयधर्माचरणे मनो-योगालाभात्तत्कृतं कर्म नास्तीत्यशुचि-साधर्म्यमर्थसिद्धं बोध्यम् । इदमाशौचं जननमरणादिनिमित्तकाशौचाद्भिन्नमेव प्रतिपद्यते । तच्च भस्मान्तं मरणान्तं वाशौचमित्युच्यते ॥

इत्यात्मीयदोषान्नित्याशौचम् ।

३–कालदोषाद् याप्याशौचम् ।

२००—चन्द्रसूर्योपरागादावपि पूर्वविलक्षणमशौचं दोषवशादुत्पद्यते । तच्च यावन्निमित्तकालमवस्थाय निमित्तापायेन सह निवर्तते इति दिक् ।

इति कालदोषाद् याप्याशौचम् ।

४–रजोदोषाद् याप्याशौचम् ।

(रजस्वलाशुद्धिः)

२०१—रजस्वलायाः सप्तदशदिनात् प्राक् पुना रजोदर्शने सद्यः शौचम् । तत्र स्नानमात्राच्छुद्धिः । अष्टादशे दिने रजोदर्शने सत्येकरात्रम् । एकोनविंशदिने रजोदर्शने सति दिनद्वयम् विंशतेरूर्ध्वं तु रजोदर्शने दिनत्रयमाशौचम् ॥ १ ॥

२०२—यस्यास्तु विंशतिदिनादर्वागेव प्रायेण रजोदर्शनं भवति तस्या दशमदिनात् प्राक् पुनारजोदर्शने स्नानमात्रम् । एकादशे दिने सत्येकरात्रम् । द्वादशे द्विरात्रम् । त्रयोदशदिनादारभ्य त्रिरात्रम् ॥ २ ॥

इति रजोदोषाद् याप्याशौचम् ।

२०३—राजद्वारमुपागतो जयपुरे वर्षे चतुर्विंशके
य: संमानमवाप्य राजभवने मत्स्यप्रदेशप्रभोः ॥
श्रीमन्माधवसिंहभूपतिमणेर्धर्मोपदेष्टाऽभवत्
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम् ॥ १ ॥

इति दोषाध्यायः षष्ठः ॥ ६ ॥

७-अथ आशौचसंकराध्यायः ।

२०४—पातः । अघसङ्करः । अशौचसङ्करः । अशौचसम्पातः । अपरपातः । उपनिपातः । सम्पाताशौचम् । सकीर्णाशौचम्-इत्येकार्थाः । अघवृद्धिमदाशौचं तस्यैकदेशः ॥

२०५—अत्राध्याये गौड़संप्रदायो द्राविडसम्प्रदायः फक्किका चेति त्रयोऽधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ।

१—गौड़सम्प्रदायाधिकारः ।

२०६—पूर्वानुक्रान्ताशौचस्य कालविभागेनाशौचान्तरपाते तद्विभागानुसारेण सङ्कीर्णाशौचं प्रवर्तते । तत्र कालविभागः पञ्चधा-पूर्वाशौचस्य प्रथमन्दिनमेको भागः । १ । द्वितीयादिपञ्चमान्त दिनचतुष्क द्वितीयो भागः । २ । षष्ठादिनवमान्त दिनचतुष्कं तृतीयो भागः । ३ । दशमन्दिन चतुर्थो भागः । ४ । दशम्या रात्रेरन्तिमः प्राचीप्रकाशात्मकोऽरुणोदयकालः पञ्चमो भागः । ५ । एवं पञ्चभिर्भागैर्भिन्नाशौचव्यवस्था पञ्चधा भवति । (केचित्तु प्रथमादिनवमान्तानां द्वितीयादिदशमान्तानां वा दिवसानां भागत्रयेण विभज्य प्रथमभागद्वये ऽन्यां तृतीये चान्यां व्यवस्थामिच्छन्ति तदेतन्मतं बहुसंमतं नास्तीत्युपेक्ष्यते) ॥

१—संपातभेदाः ।

२०७—आशौचद्वयसाम्पातिकस्वरूपं षोडशधा-मृतके मृतकम् । १ । मृतके सूतकम् । २ । सूतके मृतकम् । ३ । सूतके सूतकम् । ४ । इति जातिकृताश्चत्वारो भेदाः प्रत्येकं चतुर्द्धा-पूर्णे पूर्णम् । १ । पूर्णे खण्डम् । २ । खण्डे पूर्णम् । ३ । खण्डे खण्डम् । ४ । इत्यवस्थाभेदात् ॥ भोग्यकालोऽवस्था ॥ तेन षोडशैतानि सङ्कीर्णाशौचस्थानानि । तेषां च पूर्वोक्तकालविभागपाञ्चविध्यादशीतिः प्रकाराः ॥

२०८—तत्र मृतके मृतकं सूतके सूतकं च सजातीयं भवति । यत्तु मृतके सूतकं सूतके मृतकं वा तद्विजातीयम् । दशाह-द्वादशाह-पञ्चदशाह-मासात्मकमाशौचं पूर्णमित्युच्यते । सद्यःशौचैकाह-पक्षिणी-द्व्यह-त्र्यह-पञ्चाहाद्यात्मकं त्वपूर्णाशौचं खण्डमित्युच्यते । पूर्णे पूर्णं खण्डे खण्डमिति वा समकालं, पूर्णे खण्डं खण्डे पूर्णमिति वा विषमकालम् । एषां भेदेनाशौचव्यवस्था भिद्यते ।

२—सजातीयसंपाते व्यवस्था ।

२०९—पूर्वाशौचप्रथमदिनेऽशौचान्तरोपनिपाते तन्त्रेणोभयोरेक एव शुद्धिकालः ।

तेनेकस्मिन्दिने जनने जननान्तरस्य, मरणे मरणान्तरस्य वा सन्निपाते दशरात्रादिक्रमेकमेवाशौचं यथायथमवतिष्ठते। ननु निमित्तद्वयनिबन्धनाऽशौचवृद्धिः।

२१०—दशाहाशौचे द्वितीयं दिनमारभ्य पञ्चमरात्रिपर्यन्तं यदि सजातीयं द्वितीयं दशाहाशौचमापतति तदा पूर्वाशौचव्यपगमेन शुद्धिः।

२११—षष्ठदिनादिनवमरात्रिपर्यन्तं द्वितीयाशौचप्राप्तौ द्वितीयाशौचव्यपगमेन शुद्धिः।

२१२—दशमेऽहोरात्रे पूर्णाशौचान्तरपाते सति तद्दिनानन्तरं दिनद्वयेनाधिकेन शुद्धिः।

२१३—दशम्या रात्रेः शेषेऽरुणोदयवेलायां पूर्णाशौचान्तरपाते सूर्योदयानन्तर त्रिरात्रेणाधिकेन शुद्धिः ॥ १ ॥ "उदयात् प्राक् चतस्रस्तु नाडिका अरुणोदयः" इति स्कान्दे। अयमेव प्रभातकाल इति रत्नाकरः ॥ २ ॥

२१४—वर्धिते द्व्यहाशौचे वा यदि पुनः पूर्णाशौचान्तर पतति तदा द्व्यहत्र्यहयोर्लघुत्वाद्गुरुतरस्य पश्चिमाशौचस्यापगमेन शुद्धिः इत्येव ब्राह्मणसम्बन्धेन पूर्णे सजातीय समकालाशौचे व्यवस्था नेया।

२१५—क्षत्रियवैश्यशूद्राणान्तु स्वस्वपूर्णाशौचपूर्वार्धे समानदिनव्यापकमशौचान्तरं यदि पतति तदा पूर्वाशौचव्यपगमेन शुद्धिः। उत्तरार्धे स्वशौचान्तरपाते द्वितीयाशौचव्यपगमेन शुद्धिः।

२१६—पूर्णाशौचान्त्यदिने पूर्णाशौचान्तरपाते सर्वेषां तद्दिनानन्तरं द्विनद्वयेन शुद्धिः।

२१७—पूर्णाशौचान्तदिनस्य रात्रिशेषे प्रभातकाले पूर्णाशौचान्तरपाते सूर्योदयादारभ्याधिकेन दिनत्रयेण शुद्धिः। इति क्षत्रियादीना पूर्णे सजातीये समकाले चाशौचे व्यवस्था नेया।

२१८—त्र्यहादिखण्डाशौचाभ्यन्तरं त्र्यहादिसमकालाशौचपाते द्वितीयाशौचव्यपगमेन शुद्धिः। इति सजातीये खण्डे समकाले चाशौचे व्यवस्था।

२१९—विषमकालव्यापकानामशौचानां सन्निपातेऽधिकदिनव्यापिनाऽशौचेनातीतेन शुद्धिः। इति सजातीये पूर्णे खण्डे वा विषमकाले व्यवस्था।

३—विजातीयसंपाते व्यवस्था।

२२०—सूतकाभ्यन्तरे मृतकाशौचपाते तथा मृतकाभ्यन्तरे सूतकाशौचपाते वा मरणाशौचव्यपगमेनैव शुद्धिः। तेन जननाशौचमध्ये मरणनिमित्तकसद्यःशौचाद्यल्पकालिकाशौचान्तरपाते तेनैव जननाशौचं बाध्यते।

२२१—त्र्यहादिशावमध्ये दशाहादिसूतकपातेऽधिकमपि द्वितीयाशौचं नास्ति, किन्तु मरणाशौचस्य बलवत्वात्पूर्वशेषेणैव शुद्धिः। यत्तु दाक्षिणात्याः—स्वल्पाशौचमध्ये दीर्घाशौचपाते दीर्घाशौचस्य बलवत्त्वात् पूर्वेण शुद्धिं नेच्छन्ति, तदुपेक्ष्यम्।

२२२—स्त्रीणान्तु स्वप्रसवनिमित्तमाशौचं प्रातिस्विकम्। अतस्तदन्येन न बाध्यते। तस्मात् स्त्रीणां पतिमरणेऽपि पुत्रजन्मनिमित्ताशौचं विंशतिदिनानि, कन्याजन्मनिमित्ताशौचं तु मासं यावदवतिष्ठते। तदूर्ध्वं कर्माधिकारः॥

२२३ पितृमातृभर्तृमरणे सत्याशौचान्तरपाते कंचिद्विशेषमातिष्ठन्ते दाक्षिणात्याः। तन्नादर्त्तव्यम्। इति विजातीयाशौचे पूर्णे खण्डे वा समकाले विषमकाले वा व्यवस्था।

इति गौड़सम्प्रदायाधिकारः॥

२—द्राविड़सम्प्रदायाधिकारः।

२२४—सङ्कीर्णाशौचनिर्द्धारणाय पूर्वाशौचविभागश्चतुर्द्धा—पूर्वाशौचस्योपक्रमदिनं प्रथमभागः। १। द्वितीयादिनवमान्तं दिनाष्टकं मध्यमो भागः। २। दशमी रात्रिरन्तिमो भागः ३। दशम्या रात्रेरन्तिमः प्रहरःशेषभागः। ४। एवं चतुर्भिर्भागैः पूर्वाशौचकालं विभज्य द्वितीयाशौचपाते व्यवस्था कार्य्या।

२२५—सङ्कीर्णाशौचस्वरूपं द्वादशधा—मृतके मृतकम्, मृतके सूतकम् सूतके मृतकम् सूतके सूतकम्, इति चत्वारो भेदाः। ते समन्यूनाधिकपातभेदात्प्रत्येकं त्रेधा-तदित्थमेते साम्पातिका द्वादशभावा आशौचभेदे निमित्तानि।

१—तत्र प्रथमभागे।

२२६—प्रथमदिने तावदुत्तरक्रियाशौचाध्याये रोदनस्पर्शनानुगमनवहनदहनादिभिर्निमित्तैरघोत्पत्तिर्या पृथक् पृथगाम्नाता तत्र यः सर्वं करोति तस्य तेषु निमित्तेषु यदशौचमधिककालव्यापि स्यात् तदनुरोद्धव्यम् यथा रोदनादेकाहम्। वहनात् त्र्यहम्। दहनाच्च त्र्यहम्। अथ यो रुदित्वा वहनं कृत्वा च दाहयति तस्यापि त्र्यहमेव स्यात्, न तु प्रत्येकाशौचसङ्कलनया सप्ताहम्। समानोपक्रमेण सहैव प्रवृत्तानां तेषां स्वस्वकाले निवृत्तौ सर्वशेषे शुद्धिसिद्धेः। अयमेव न्यायः सर्वत्रानुक्ते द्रष्टव्यः।

२२७—यद्येकस्मिन्नेव दिने समं न्यूनमधिकं वा युगपदशौचद्वयं प्रवर्तते, यदि वा प्रथमाशौचे प्रवृत्ते तस्मिन्नेव दिने पुनरपराशौचं प्रवर्तते तदा तन्त्रेणान्यसिद्धिः, द्वयोरेककाल-

त्वात्। अत एव यत्रापि स्त्रिया भर्त्रा सहानुगमनं तत्रापि दशाहमेवाशौच न त्वधिकवृद्धिः। तन्त्रेणोभयसिद्धेः। इति प्रथमदिनाशौचव्यवस्था॥

२—द्वितीयभागे।

२२८—द्वितीयादिनवमान्तेऽष्टाहात्मके मध्यमे भागे मृतकसजातीयविजातीयसमन्यूनपाताः सूतकसजातीयसमन्यूनपाताश्च यद्यापतन्ति तदैतेषु षट्स्वपि पक्षेषूत्तराशौचं नास्ति। पूर्वाशौचकालेनैवोभयोः शुद्धिः। यत्तु त्र्यहादिखण्डाशौचे संपाते उत्तरेणैव शुद्धिरिति गौडा आहुः। तन्न। पूर्वाशौचे खण्डाशौचे चोभयत्रापि पूर्वशेषेणैव शुद्धेर्युक्तत्वात्।

२२९—अथैतस्मिन्नष्टदिनात्मके मध्यमे भागे यदि मृतके सजातीयविजातीयाधिकपाताः स्युः। सूतके वा सजातीयाधिकपातः स्यात्, यदि वा सूतके विजातीयसमन्यूनाधिकपाताः स्युः। तदैतेषु षट्स्वपि पक्षेषूत्तराशौचं समाप्य शुद्धिर्ज्ञेया। न तु पूर्वाशौचमात्रेण तत्र शुद्धिः। यत्तु मरणोत्पत्तियोगे मरणस्य बलत्वात् "शावेन शुद्ध्यते सूतिः" इति सिद्धान्ताच्च त्र्यहादिशावमध्ये यत्र दशाहादिपूर्णसूतकपातस्तत्राप्युत्तराशौचं नास्ति, किन्तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिरिति गौडा आहुः। तन्न। उत्तरस्य कालाधिक्येन बलवत्त्वात्। "अघवृद्धिमदाशौचं पश्चिमेन समापयेत्" इति सिद्धान्ताच्च। तेन त्र्यहादिशावे दशाहादिपूर्णसूतकपाते पूर्वशेषेण शुद्धिर्नास्ति किन्तूत्तरं समाप्यैव शुद्धिर्ज्ञेया॥ उत्तरेण सूतकेन शावाशौचापवादेऽपि शावनिमित्तकमस्पृश्यत्वं नापोद्यते। एतावतैवात्र मरणाशौचस्य बलवत्त्वम्। एवमेव दशाहसूतकमध्ये तदन्ते वा यत्र त्र्यहादिशावप्राप्तिस्तत्राप्यधिककालव्यापिना पूर्वेण सूतकेन शावाशौचापवादेऽपि शावनिमित्तकमस्पृश्यत्वं भवत्येव।

२३०—पूर्वानुवृत्ते मृतकाशौचे यदि मूल्यं गृहीत्वा, कश्चिच्छवदाहं परतः कुर्यात् तदा शवदाहनिमित्तकाशौचस्य न पूर्वेण शुद्धिः। किन्तु शवदाहस्यात्यधिकाशौचप्रकर्त्तृकत्वात्तन्निमित्तकाशौचं समाप्यैव शुद्धिः। मातुलादिसम्बन्धेन दाहमात्रकरणे तु त्रिरात्रमेवेत्युक्तम्।

२३१—सूतिकायास्तु प्रसवनिमित्तं त्वाशौचं प्रातिस्विकम्। अतस्तदपरेण नापोद्यते। तेन दशाहे त्र्यहे वा मरणाशौचे पश्चात् प्राप्तेऽपि तस्याः प्रसवनिमित्ताशौचोत्तरमेव कर्माधिकारः।

२३२—स्वपुत्रजननाशौचस्य पूर्वार्द्धे परार्द्धे वा ज्ञातिजनने तु पूर्वाशौचकालेनैव शुद्धिः।

२३३—ज्ञातिजननाशौचस्य पूर्वार्द्धे स्वपुत्रजनने ज्ञातिजननाशौचकालेन शुद्धिः। परार्द्धे चेत् स्वपुत्रजननाशौचकालेन शुद्धिः॥

२३४—पुत्रभार्याश्च सपिण्डाद्याशौचेन मातापित्रोर्भर्तुश्चाशौचापगमं नार्हन्ति। सपिण्डाशौचापेक्षया तेषामशौचस्य बलवत्वात्। तेन तत्रेयं वक्ष्यमाणरीत्या व्यवस्था द्रष्टव्या।

२३५—ज्ञातिमरणाशौचस्य पूर्वार्द्धे पितृमातृभर्तृमरणे पूर्वाशौचकालेन शुद्धिः। परार्द्धे तु पराशौचकालेन।

२३६—एवं पितृमातृभर्तृमरणाशौचस्य पूर्वार्द्धे परार्द्धे वा ज्ञातिमरणे पूर्वाशौचकालेनैव शुद्धिः।

२३७—मातरि मृतायां तदशौचे यदि पश्चात् पिता म्रियते तदा पितुः शेषेण शुद्धिः। पितरि मृते तदशौचे यदि पश्चान्माता म्रियते तदा पित्राशौचान्ते मातुः पक्षिणीमधिकां कुर्य्यात्। यदि त्वात्मघातादिना पितृमरणं स्यात् तदा पितुरशौचाभावात् पितृमरणोत्तरं मातृमरणेऽपि न पक्षिणी-वृद्धिः। किन्तु मातुः पूर्णमाशौचम्। केचित्तु पित्राशौचीयदशमदिनात् प्रागेव मातृमरणे पक्षिणीवृद्धिः। दशम्यां रात्रौ प्रभाते वा मातृमरणे तु द्व्यहत्र्यहवृद्धिसमुचिता पक्षिणी कार्येत्याहुः। तदपरे नानुमोदन्ते। मातुरन्वारोहणे तु न पक्षिणीवृद्धिः। किन्तु पैतृकाशौचसमाप्त्यैव शुद्धिः, सहगमने द्वयोरपि सम्पूर्णाशौचयोस्तन्त्रेण सहैव शुद्धेः। अथ यत्र पूर्वदिने पतिमृत्युः, परदिने तु पत्न्याः पतिशवेन सह चितारोहणं तत्रापि तन्त्रेण दशाहमेवाशौचं न तु वृद्धिः। पतिदाहानन्तरन्तु दिनान्तरे मृतायां पत्न्यां भिन्नचितादग्धायां सत्यां पित्राशौचानन्तरं पक्षिणी-वृद्ध्या पुत्रस्याशौचनिवृत्तिः। न तु पूर्वाशौचनिवृत्तिमात्रेण शुद्धिः। मातृमरणस्य महागुरुनिपातत्वात्॥

२३८—भर्तुरशौचोत्तरं पत्न्या अन्वारोहणे तु त्र्यहं मात्राशौचमिति पृथ्वीचन्द्रः, गौडाश्च॥

२३९—भर्तुर्ब्राह्मणत्वे क्षत्रियादिभार्याणामन्वारोहणे तु मात्राशौचान्ते मातुस्त्र्यहमित्यपरार्कः।

२४०—युद्धहतस्य सद्यः शौचे प्राप्ते तदन्वारोहणे पुत्रस्त्रिरात्रं मात्राशौचमनुरुन्ध्यात्। पितुरपि तत्र त्र्यहेणैव पिण्डदानं कुर्यात्। एकचितौ दाहे उभयोः सद्यःशौचमेवेति रघुनन्दनादयो गौडाः।

२४१—गृहीताशौचानां पुत्राणां पितुः संस्कारे प्रक्रान्ते यदि माता सपिण्डो वा कश्चित् म्रियते तदा तु न पैतृकाशौचानुरोधः कार्यः। किन्तु मातृमृत्युनिमित्तं सपिण्डमृत्युनिमित्तं च पूर्णमेवाशौचं कार्यम्। अतिक्रान्तकालात् विद्यमाननिमित्तस्य बलवत्वात्।

२४२—प्रोषितस्य पितुर्द्वादशवर्षोत्तरं पूर्णशरदाहादिसंस्काराशौचे प्रक्रान्ते तन्मध्ये सपिण्डमरणेऽप्येवम् सपिण्डमृत्युनिमित्तं पूर्णाशौचमेवानुरोध्यम्। न तु पित्राशौचेन तत्र सपिण्डाशौचबाधः। इत्यन्तर्दशाहे व्यवस्था। (२)

३—तृतीयविभागे ।

२४३—शावस्य सूतकस्य वा पूर्णाशौचस्यान्त्यरात्रौ शावे सूतके वा द्वितीये पूर्णाशौचे प्राप्ते तदन्त्यरात्रेः पश्चाद्दिनद्वयेनाधिकेन शुद्धिः । यत्तु गौडाः—दशमे दिनेऽप्यशौचान्तरप्राप्तौ दिनद्वयवृद्धिमिच्छन्ति तन्नादर्त्तव्यम् : मनुवचनेऽन्तर्दशाहे भिन्नव्यवस्था करणात् गौतमशाता-तपादिवचने रात्रिशेषपदोपादानाच्च दशम्या रात्रेरेव वृद्धिनिमित्तत्वात् ।

४—तृतीयचतुर्थविभागयोः ।

२४४—अथान्त्यरात्रेरन्तिमे यामे द्वितीयाशौचप्राप्तौ तु तदन्त्यरात्रेः पश्चाद्दिनत्रयेणाधिकेन शुद्धिः । यत्तु गौडाः—गौतमवचने प्रभातपदं दृष्ट्वा प्राचीप्रकाशात्मकस्यारुणोदयकालस्यैव निमित्तत्वमिच्छन्ति तन्न । शातातपवचने यामशेषपदसत्वात् प्रभातपदस्यापि यामशेषोपलक्षकत्व न ॥

२४५—यदि तु रात्रिशेषे यामशेषे वा ज्ञातिजननाशौचे स्वपुत्रजनन स्यात्, यदि वा ज्ञातिमरणाशौचे पितृमातृभर्तृ मरणं स्यात्, तदा तादृशजननमरणकालादारभ्य पूर्णमेव दशाहा-दिरूपमुत्तराशौचं प्रवर्त्तते न तु दिनद्वयमात्रं दिनत्रयमात्रं वाऽशौचवृद्धिः ।

२४६—यदि वा स्वपुत्रजननाशौचान्त्यरात्रौ यामशेषे वा ज्ञातिजननं स्यात्, अथवा पितृमातृभर्तृ मरणाशौचान्त्यरात्रौ यामशेषे वा ज्ञातिमरणं स्यात्,तदापि पूर्वाशौचकालेनैव शुद्धिः । न तु दिनद्वयं दिनत्रयं वाशौचवृद्धिः ।

२४७—अथ यदि स्वपुत्रजननाशौचान्त्यरात्रौ यामशेषे वा स्वपुत्रान्तरजननं स्यात् तदा तु द्व्यहं त्र्यहं वा वृद्धिर्भवत्येव ।

२४८—एवं मातृमरणाशौचान्त्यरात्रौ यामशेषे वा पितृमरणं स्यात्, अथवा पितृमरणा-शौचान्त्यरात्रौ यामशेषे वा मातृमरणं स्यात्, उभयत्रापि द्व्यहं त्र्यहं वा वृद्धिरेव भवति न तु पूर्णाशौचम् ।

२४९—संपूर्णाशौचान्त्यरात्रौ रात्रिशेषयामे वा त्रिरात्रादिखण्डाशौचपाते तु पूर्वशेषेणैव शुद्धिः । न तु द्विरात्रं त्रिरात्रं वा वृद्धिः । षडशीत्यादिमते तु तत्रापीष्यते द्वित्रदिनवृद्धिस्तदपरे नानुमोदन्ते ।

२५०—त्र्यहाद्यल्पाशौचान्त्यरात्रौ रात्रिशेषयामे वा त्र्यहादिखण्डाशौचपातेऽपि पूर्व-शेषेणैव शुद्धिर्न तु द्विरात्रं त्रिरात्र वा वृद्धिः ।

पूर्वाशौचान्त्यवर्धितद्वित्रिदिनमध्येऽधिकाशौचान्तरपाते तु वर्धितस्याल्पत्वात् तेनोत्तरस्याधिकस्य बाधानौचित्यादुत्तराशौचसमाप्त्यैव शुद्धिः इति रात्रिशेषयामशेषयोर्व्यवस्था ॥ (३।४)

इति द्राविडसम्प्रदायाधिकारः ।

३—फक्किकाधिकारः ।

२५२—जननाशौचद्वयसन्निपाते पूर्वजातको यद्याशौचकालाभ्यन्तरे मृतस्तर्हि सपिण्डानां सद्यः शौचेन पूर्वाशौचनाशः । पूर्वाशौचनाशादेव तु परार्द्धजातबालकसम्बन्धिभ्यां मातापितृभ्यां भिन्नानां सपिण्डानां पूर्वार्द्धजातबालकसम्बन्धिमातापित्रादिसकलसपिण्डानां च परजननाशौचस्यापि निवृत्तिः सिद्धा भवति । जननिमित्तकं स्पर्शाशौचं तु पूर्वजातबालकसम्बन्धिनोर्मातापित्रोः स्वस्वजात्युक्तं तिष्ठत्येव ।

२५३-जननाशौचद्वयसन्निपाते प्रथमजननाशौचपूर्वार्द्धजातबालकमरणे तन्मातापित्रोः पूर्वाशौचकालपर्यन्तं स्पर्शाशौचम् । प्रथमजननाशौचपरार्द्धजातबालकमरणे तु तज्जननकालमारभ्य तन्मातापित्रोः स्वजात्युक्तं स्पर्शाशौचम् ।

(द्वित्राद्यशौचसंपाते विशेषाभिधानम्)

२५४—वर्धिते द्वित्रिदिनमध्ये पुनरशौचान्तरपाते सति समन्यूनयोः पूर्वशेषेण शुद्धिः । अधिकस्य तु परशेषेण शुद्धिर्न तु पूर्वेण ।

२५५—तुल्यदिनप्रमाणयोर्जननमरणाशौचयोः सन्निपाते मरणाशौचकालेन शुद्धिः न्यूनाधिकदिनप्रमाणयोर्जननमरणाशौचयोः सन्निपाते तु दीर्घाशौचकालेन शुद्धिः ।

२५६—पूर्वोक्तसपिण्डद्वयजननवर्धिताशौचमध्ये पितृमातृभर्तृमरणे वर्धितसपिण्डद्वयजननाशौचकालेन शुद्धिः ।

२५७—शूद्रेतराया भार्यायाः पुत्रजननप्रयुक्तविंशतिरात्राशौचाभ्यन्तरे पत्युर्मरणेऽपि पुत्रजननाशौचकालेन शुद्धिः ।

२५८—एकस्मिन् दिने पूर्णाशौचिसपिण्डद्वयमरणे यावदनुवर्त्तते कर्माशौचं, तावदेव च सर्वसपिण्डानां स्पर्शाशौचमनुवर्त्तते ।

२५९—समानोदकमरणे कर्माशौचं चैकरात्रम् । विद्युदादिना मरणेऽप्येवम् । अशौचमध्ये विदेशस्थासपिण्डमरणे तु कर्माशौचं त्रिरात्रम्, स्पर्शाशौचं तु स्नानात् प्रागेव । तस्मात् पूर्वोक्तत्रिरात्राशौचद्वयापेक्षयैतत् त्रिरात्रं लघुभूतं प्रतिपद्यते । तेनैषां सन्निपाते गुरुणैव शुद्धिः ।

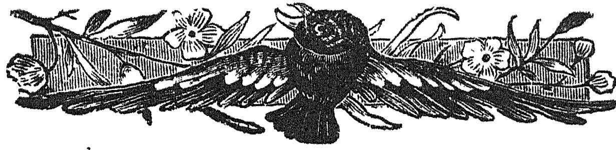
२६०—विदेशप्रमीतज्ञातित्रिरात्राशौचस्य लघुभूतस्य गुरुणा विदेशप्रमीतपितृमातृभर्तृ-त्रिरात्राशौचेन शुद्धिः।

२६१—कन्यापुत्रयमलोत्पत्तौ सर्ववर्णाया मातुर्मासेन शुद्धिः। पित्रादिसपिण्डानां तु स्वजात्युक्ताशौचं निरूपितम्। तत्राशौचमध्ये तयोरेकतरमरणे सत्याशौचे कश्चिद्विशेषो विधीयते। तथाहि-शूद्रभिन्नमातुः कन्यामरणात् सद्यः शुद्धिः, न तु पुत्रमरणात्। पित्रादिसपिण्डानां तु प्रथमजातमरणाच्छुद्धिः न तु परजातमरणात्। शूद्रायास्तु मातुर्यमलोत्पत्तौ प्रथमजातमरणाशौचेन शुद्धिः, न तु परजातमरणात्। पित्रादिसपिण्डानां तु प्रथमजातमरणाच्छुद्धिः न तु परजातमरणात्। एवमन्यदप्यूह्यम्।

२६२—पूर्वाशौचमध्ये समुद्भूतमपि पूर्वाशौचोत्तरं यदि ज्ञातं स्यात्, तदोत्तरमप्यशौचमनुवर्त्तत एव, न तु पूर्वशेषेण शुद्धिस्तत्र भवति। पूर्वाशौचनिवृत्तेः पश्चाच्छ्रवणेनोत्तराशौचस्य प्रवर्त्तमानतया पूर्वेण तदनिवृत्तेः। इति फक्किकाधिकारः।

२६३—लब्ध्वा रामभजात् पुरा जयपुरे सारस्वताद् व्याकृतिं,
पश्चाच्छैवकुमारमङ्घ्रिकमलं काश्यां समासाद्य यः।
षट्शास्त्राणि च धर्मशास्त्रसहितान्यङ्गानि चाधीतवान्,
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम्॥ १॥

इति आशौचसंकराध्यायः सप्तमः॥ ७॥



अथ अतिक्रान्ताशौचाध्यायः

२६४—अत्राध्याये अन्तर्दशाहाधिकारः सूतकनिर्दशाधिकारः, शावापूर्णनिर्दशाधिकारः, सदेशस्थपूर्णशावातिक्रमः विदेशस्थपूर्णशावातिक्रमः देशान्तरलक्षणं चेति षडधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ॥

२६५—अतिक्रांताशौचम्, व्यतीताशौचम्, अतिकालाशौचम्, आतिकालिकाशौचम्, प्रोषिताशौचम्, देशान्तराशौचम्, विदेशस्थाशौचम्, इत्येकार्थाः।

२६६—पूर्णाशौचखण्डाशौचयोर्वास्तविके प्रवृत्तिकालेऽतिक्रांते सत्यनन्तरं जन्ममृत्युश्रवणे यदाशौचं प्रवर्त्तते तदतिक्रांताशौच नाम। तत् तावद् द्वेधा—अन्तर्दशाहं निर्दशं चेति। आद्यमाशौचप्रवृत्तिकालातिक्रमणात्! द्वितीयं तु आशौचनिवृत्तिकालातिक्रमणात्। तत्र दशशब्दो यावदाशौचकालोपलक्षकः। तेन पूर्णाशौचे खण्डाशौचे चेदं भागद्वयमाभ्यां शब्दाभ्यां व्यवह्रियते। दशाहो, द्वादशाहः पञ्चदशाहो, मास इति चत्वारि पूर्णाशौचानि। तदितराण्येकाहपक्षिणीत्र्यहादीनि खण्डाशौचानि।

१ अन्तर्दशाहाधिकारः।

(अन्तर्दशाहे श्रवणे)

२६७—सपिण्डजननस्य सपिण्डमरणस्य वा पूर्णाशौचप्रयोजकस्य खण्डाशौचप्रयोजकस्य वा पूर्वोक्ताशौचकालाभ्यन्तरं श्रवणे शेषाहाशौचम्। तेन यावदवशिष्टमाशौचकालस्य, तावदाशौचमनुरोध्यम्। एतच्च मातापित्रादीनां पुत्रादीनां त्रिपुरुषसपिण्डानां पुत्रादीनां त्रिपुरुषसपिण्डानां सप्तपुरुषसपिण्डानां सकुल्यानां सोदकानां सगोत्राणां विगोत्राणां च सर्वेषां समानम्।

२६८—मातापित्रोर्मरणश्रवणे पुत्रजननश्रवणे वा श्रवणदिनादारभ्य दशाहं कार्यमिति केचिदाहुः। तन्नाद्रियते शिष्टैः। अनिर्दशाहे शेषाहाशौचस्यैव सिद्धान्तात्।

२६९—पारिभाषिकदेशान्तरे मृतस्य दशाहाभ्यन्तरमपि मरणश्रवणे मातापित्रोः पुत्रस्य सपिण्डादीनां च सर्वेषां सद्यः शौचमिति केचिदाहुः—तदेतत् प्रमाणवचनानुपलम्भादुपपत्तिविरोधाच्चाज्ञानोपकल्पितत्वाच्च तुच्छमेव। सद्यः शौचविधायकवचनानां निर्दशाशौचविषयत्वात्। यत्रोत्सर्गतो दशरात्रपर्यन्तं यत्रत्या वार्ता न श्रूयते तत्र तद्देशान्तमिति परिभाषणाद्देशान्तरव्यवस्थाया अन्तर्दशाहमप्रसक्तेः।

२७०—मातापित्रोर्मरणे दशाहमध्ये मरणश्रवणे सत्यूढायाः कन्यायास्त्रिरात्रमाशौचं वाच्यमिति दाक्षिणात्याः। इत्यन्तर्दशाहाधिकारः॥

२ निर्दश–सूतकाधिकारः।

(दशाहान्तरे जननश्रवणे)

२७१—दशाहादिपूर्णाशौचकाले एकाहादिखण्डाशौचकाले वा यथायथं व्यतीते यदि पश्चाद्विदेशस्थजननं श्रूयते तदा जननाशौचं नास्ति। प्रसवे अतिक्रान्ताशौचप्रत्याख्यानात्॥

२७२—पुत्रजननश्रवणे तु पित्रा सचैलस्नानं कार्य्यम्। यत्तु दशाहाशौचमनुरोध्यमिति केचिदाहुः। तन्नाद्रियते शिष्टैः। इति निर्दशजातकाधिकारः॥

३ निर्द्दशापूर्णशावाधिकारः।

(खण्डाशौचे शावेऽतिक्रान्ते)

२७३—त्रिरात्रादिखण्डाशौचप्रयोजकस्य सपिण्डमरणस्य त्रिरात्राद्याशौचकालादूर्ध्वं दशाहमध्ये ज्ञानेऽप्याशौचं नास्ति। आचारात्तु स्नानोदकमात्रं कार्य्यम्।

२७४—अनुपनीतमरणादिनिमित्तकत्रिरात्रादिषु भगिनीमातुलादिमरणनिमित्तकत्रिरात्रादिषु चातिक्रान्तेषु अतिक्रान्ताशौचं नास्ति। दशाहादिपूर्णाशौचातिक्रम एव विदेशस्थमरणश्रवणे त्र्यहादिरूपातिक्रान्ताशौचाभ्युपपत्तेः। महागुरुनिपाते तु खण्डाशौचेऽप्येकरात्रमशौचमनुरोध्यमिति दाक्षिणात्याः।

२७५—मातापित्रोर्मरणे दशाहोर्ध्वं वर्षान्ते कालान्तरे वा मरणश्रवणे सत्यूढायाः कन्यायाः पक्षिणीति दाक्षिणात्याः। इति अपूर्णाशौचातिक्रमाधिकारः।

४ सदेशस्थपूर्णशावाधिकारः।

(सदेशस्थशावाशौचे पूर्णे)

२७६—अतिक्रान्ताशौचं द्वेधा प्रवर्त्तते—समानदेशेऽप्यश्रवणाद् देशान्तरस्थत्वाच्च। पारिभाषिकदेशान्तरलक्षणानाक्रान्तः प्रदेशः समानदेशः। स एव सदेशः।

२७७—सदेशे मृतस्य तदुचिताशौचकालोत्तरं श्रवणदिनादारभ्याशौचं वक्ष्यमाणनियमानुसारेण कार्यम्। तथाहि—

२७८—मातापित्रोर्दशाहोत्तरं वर्षाभ्यन्तरं वर्षाद् द्विवर्षाद्वोर्ध्वं च मरणश्रवणे श्रवणदिना-द्दशाहमाशौचं पुत्रस्येति पैठीनसि ऋषिः प्राह (१) एतच्च श्रेयसि कनीयसि वा श्राद्धकर्त्तरि पुत्रेऽवकल्पते इति पश्यामः (२) अहीनवर्णायाः सपत्न्या अप्येवं दशरात्रमिति केचित् (३) ॥

२७९—मातापित्रोः पतिपत्न्योश्च दशाहोत्तरं वर्षाभ्यन्तरं मरणश्रवणे त्रिरात्रम् पुत्रस्य पत्न्याः पत्युर्वा कर्माशौचम्। स्पर्शाशौचं तु सचैलस्नानान्निवर्त्तते (१) अथ वर्षोत्तरं द्विवर्षात् प्राङ् मातापित्रोर्मरणश्रवणे पुत्रस्यैकाहमाशौचम् (२) पतिमरणश्रवणे पत्न्या अप्येकाहम्। (३) द्विवर्षादूर्ध्वं तु सद्यः शौचमिति देवल ऋषिः प्राह (४) एतच्चाविभक्ते कनीयसि कर्मकर्तृ-त्वाभावेऽवकल्पते इति पश्यामः (५) ॥

२८०—स्वप्रसूभिन्नायामहीनवर्णायां पितुः पत्न्यां प्रमीतायां दशाहोत्तरं वर्षाभ्यन्तरं वा वर्षाद्द्विवर्षाद्वोर्ध्वञ्च श्रवणे सापत्न्यपुत्रस्य त्रिरात्रमिति दक्ष ऋषिः प्राह (१) औरसे पुत्रे प्रमीते पितुरप्येवं त्रिरात्रमिति ब्रह्मपुराणम् (२) हीनवर्णायाः सपत्न्या अप्येवं त्रिरात्रमिति केचित् (३)।

२८१—केचित्पुनरेकदेशिनोर्मातापित्रोः पत्युश्चाशौचातिरेकमनिच्छन्तो वक्ष्यमाणसपिण्ड-नियमानुसारेणैव तदशौचमभ्युपगच्छन्ति। तन्नावकल्पते मातापित्रादीनामितरसपिण्डापेक्षया विशिष्ट-सम्बन्धवत्त्वाद शौचाधिक्यस्यौचित्यात्।

२८२—दशाहाशौचिनः सदेशे मृतस्य दशाहोत्तरं वर्षाभ्यन्तर श्रवणे सपिण्डादेस्त्रिरात्रम् वर्षादूर्ध्वं तु सद्यः शौचमिति मनुशङ्खौ महर्षी प्राहतुः (१) एतच्च मातापितृभ्यां पत्युः पुत्रात् सपत्नीमातुश्च भिन्नेषु दशाहाशौचिषु सामान्यतो व्यवतिष्ठते इति पश्यामः (२) दशाहाशौचिनः पूर्णाशौचिनः इत्येकार्थम्। तेन क्षत्रियादिष्वपि तत्तदाशौचकालातिक्रमे वर्षमध्ये सपिण्डमरण-श्रवणे त्रिरात्रम्। वर्षादूर्ध्वं तु स्नानमात्रम् (३) ॥

२८३—दशाहाशौचिनः सदेशे मृतस्य दशाहोत्तरं षण्मासात् प्राङ् मरणश्रवणे त्रिरात्रम्। ततो वर्षात् प्रागेकरात्रम् वर्षादूर्ध्वं तु स्नानमात्रमिति मैथिलरुद्रधरासम्मतपाठभेदाद्देवल ऋषिः प्राह (१) दशाहोत्तरं षण्मासात् प्राक् त्रिरात्रम्। ततो नवममासात् प्राक् पक्षिणी। ततो वर्षात् प्रागेकरात्रम्। तदूर्ध्वं स्नानमात्रमिति मैथिलो रुद्रधरः स्वकल्पनया प्राह। एतदेव युक्तमित्यमृतना-थादयो मैथिला आतिष्ठन्ते (२) दशाहोत्तरं त्रिमासात् प्राक् त्रिरात्रम् ततः षण्मासात् प्राक् पक्षिणी। ततो नवममासात् प्रागेकरात्रम्। तदूर्ध्वं स्नानमात्रमिति वृद्धवसिष्ठ ऋषिः प्राह। एतदेव युक्तमिति कमलाकरादयो दाक्षिणात्या आतिष्ठन्ते (३) दशाहोत्तरं त्रिपक्षात् प्राक् त्रिरात्रम्, षण्मासात् प्राक् पक्षिणी। ततो नवममासात् प्रागेकरात्रम्। तदूर्ध्वं स्नानमात्रमित्यपरो देवल ऋषिः प्राह। एतदेव युक्तमिति माधवादयो दाक्षिणात्या आतिष्ठन्ते (४) दशाहोत्तरं त्रिपक्षात्

प्राक् त्रिरात्रम् । ततो नवममासात् प्राक् दिवामात्रं निशामात्रं वा । तदूर्ध्वं स्नानमात्रमिति विष्णुऋषिः प्राह । एतदप्यन्ये दाक्षिणात्या आतिष्ठन्ते (५)। विकल्पे त्वाचारः प्रमाणम्। आपदनापद्विषयत्वेन वा व्यवस्थेयम् । एवं ह्यनेकधा अघसङ्कोचविधानं सत्यावश्यकत्वे तदावश्यकतानुसारेण पृथगवतिष्ठते । अथवा सति विकल्पे देशाचाराद् व्यवस्था (६)।

२८४—दशाहोत्तरं वर्षाभ्यन्तरे वर्षादूर्ध्वं वा मरणश्रवणे पक्षिणीति गौतमो महर्षिः प्राह (१)। एतच्च चतुःपञ्चाहाशौचिनोर्मृतयोरतिक्रान्ताशौचमिति शुद्धिकौमुदीकारो गोविन्दो व्याचष्टे (२)। अथ सद्यःशौचिनामेकाह-द्व्यह-त्र्यह-शौचिनाञ्चातिक्रान्ताशौचं नास्त्येवेत्युक्तं प्राक् [२७०।२७१] अधिकरणयोः(३) ये तु खण्डाशौचिनां सर्वेषामतिक्रान्ताशौच नास्तीत्यभ्युपगच्छन्ति तेषां मते चतुःपञ्चाहाशौचिनामप्यतिक्रान्ताशौचं न स्यात्। तथा चेदं गौतमोपदिष्टं पक्षिणीविधानं पूर्ववदघसङ्कोचपरमेवावश्यकत्वेऽवकल्पते इति पश्यामः (४)।

(१–मरणमासादावज्ञाते)

२८५—यत्र तु मरणमात्रं श्रुतं, मासादिकं तु विशिष्य न ज्ञातं तत्र श्रवणादिनादारभ्य स्ववर्णोचितं दशाहाद्याशौचं पूर्णमेवानुरोध्यम् इति सदेशस्थपूर्णशावाधिकारः।

२—विदेशस्थशावाधिकारः।

(विदेशस्थपूर्णशावाशौचम्)

२८६—देशान्तरस्थे प्रेते दशरात्रोत्तरं वर्षाभ्यन्तरं श्रवणे सत्येकरात्रम्। वर्षादूर्ध्वन्तु स्नानमात्रमिति वशिष्ठविष्णू प्राहतुः (१)। (एतच्च मातापित्रोः पतिपत्न्योश्चातिक्रान्ताशौचे नेयम्। सम्बन्धाधिक्येन तत्रैव तथौचित्यात्) (२)।

२८७—देशान्तरस्थे ज्ञातिमरणे दशाहोत्तरं वर्षाभ्यन्तरं श्रवणे वर्षादूर्ध्वं वा श्रवणे सद्यः शौचमिति मनुयाज्ञवल्क्यगौतमपैठीनसिपराशरबृहत्पाराशराश्च प्राहुः (१)। सपिण्डाः सोदकाः सगोत्राश्च ज्ञातय उच्यन्ते (२)॥

२८८—मैथिलास्तु देशान्तरे मातापित्रोः पतिपत्न्योर्ज्ञातीनां च मरणे वर्षादूर्ध्वं वा वर्षाभ्यन्तरं दशाहाभ्यन्तरमपि वा श्रवणे सर्वत्र निर्विशेषं सद्यःशौचमेवोचितं पैठीनसिगौतमपराशरैस्तथोक्तत्वादित्याहुः (१)। वस्तुतस्तु—अन्तर्दशाहं मरणश्रवणे सर्वत्र शेषाहाशौचमेव सिद्धान्तः। मनुयाज्ञवल्क्याभ्यां निर्देशे ज्ञातिमरणे सद्यःशौचविधानात्तदेकवाक्यतया पैठीनसिगौतमपराशरवचनानामपि निर्दशज्ञातिमरणविषयतयैवोपनेयत्वात्। अनिर्गते दशा

त्वशौचशेषेण शुद्धेः स्पष्टं विष्णुबृहस्पतिभ्यामुक्तत्वात् (२)। निर्देशे सद्य शौचविधानमपि मातापितृभिन्नविषयतयैव नेयम्, वचनान्तरसंवादादिति पश्यामः (३) ॥

२८९—दाक्षिणात्यसम्प्रदाये त्वयं विशेषः। मातापित्रोः पतिपत्न्योः सपत्न्याश्च समानदेशे देशान्तरे वा मरणे निर्विशेषं दशाहोत्तरं वर्षोत्तरं वा श्रवणे पुत्रस्य पत्न्याः पत्युः सपत्न्या वा यथायथं दशाहादिपूर्णाशौचमेवानुवर्त्तते न तु तत्राघसङ्कोचः।

२९०—सापत्न्यमातुरौरसपुत्रस्य च समानदेशे देशान्तरे वा मरणे दशाहोत्तरं वर्षोत्तरं वा श्रवणे निर्विशेषं पुत्रस्य मातापित्रोश्च त्रिरात्रम्। न तु ततो न्यूनमित्याहुः। तत्र देशाचाराद् व्यवस्था।

६—देशान्तरलक्षणम्।

२९१—देशान्तरलक्षणं चतुर्धा निरूप्यते-योजनतः, गमनीयकालतः, व्यवधानतः, भाषाभेदतश्चेति। विप्रस्य विंशतियोजनान्तरं, क्षत्रियस्य चतुर्विंशतियोजनान्तरं, वैश्यसच्छूद्रयोस्त्रिंशद्योजनान्तरं, निकृष्टशूद्रस्य तु षष्टियोजनान्तरमित्येवं योजनान्तरितो देशो देशान्तरमिति दाक्षिणात्याः (१)। विप्रस्य चतुर्विंशतियोजनान्तरं, क्षत्रियस्य त्रिंशत्, वैश्यसच्छूद्रयोश्चत्वारिंशत्, निकृष्टशूद्रस्य तु षष्टिरिति परे केचित् (२)। षष्टियोजनान्तरितमेवोत्सर्गतः सर्वेषां देशान्तरम्। गिरिनदीव्यवहिते भिन्नभाषे वा प्रदेशे तु योजनानपेक्षणाच्चत्वारिंशद्वा त्रिंशद्वा चतुर्विंशतिर्वेति, योजनसंख्याविशेषानादरे तद्वचनानां तात्पर्यं नेयमिति मैथिलाः। तदेतदेकं योजनकृतं देशान्तरलक्षणमुक्तम् (३)।

२९२—मैथिलानां केचिदित्थमाहुः। न भाषाभेदमात्रेण न वा गिरिव्यवधानमात्रेण नापि वा नदीव्यवधानमात्रेण देशान्तरत्वं कल्प्यते। किन्तु यत्रैतत्त्रितयं समुच्चितं भवति तत्र षष्टियोजनाभ्यन्तरेऽपि देशान्तरत्वव्यवहारः कार्यः। भाषाभेदगिरिनदीव्यवधानाभावे तु षष्टियोजनान्तरदेशे देशान्तरत्वव्यवहारः कार्यः। इति। अतएव काश्यां मृतस्य तीरभुक्तिदेशस्थितं प्रति, देशान्तरत्वव्यवहारो नास्ति मिथिलातः काश्यास्त्रिंशद्योजनमात्रान्तरितत्वात्। भाषाभेदसत्वेऽपि महानदीगिरिव्यवधानाभावाच्च। सरयूगण्डक्यादीनामन्तरालस्थत्वेऽपि तासां महानदीत्वाभावात्। गङ्गायमुनाशतद्रुसविधानामेव महानदीत्वेन व्यवहारात्।

अथ प्रयागमरणे तु तीरभुक्तौ भवत्येव देशान्तरमृतत्वव्यवहारः। षष्टियोजनाभ्यन्तरत्वेऽपि भाषाभेदसत्वाद् गिरिव्यवधानाद् गङ्गाव्यवधानाच्च। तेन प्रयागमरणे मिथिलास्थानां ज्ञातिनामन्तर्दशाहेऽपि श्रवणे सद्यःशौचमित्याहुः॥

१—देशान्तरसम्बन्धे स्वीयमतम् ।

२६३—वयन्तु ब्रूमः । इयं हि देशान्तरपरिभाषा लोकसिद्धा न त्वत्र शास्त्रेण कश्चिदर्थः साध्यः । लोके यत्र यत्र येन येन निमित्तेन देशान्तरत्वं लौकिकाः प्रतिपद्यन्ते तत्तदनुवादेन तत्र शास्त्राभ्यनुज्ञामात्रमेतत् क्रियते । अस्ति च लोके गिरिसम्बन्धान्नदीसम्बन्धाद्भाषाभेदाद्विदूरत्वाच्च देशान्तरत्वप्रतिपत्तिः । अतो यावता लौकिकानामाचारव्यवहाराद्याम्नायभेदसाधनः प्रतिपत्तिभेदो देशान्तरत्वेऽनुभूतचरस्तावतैवाशौचसंकोचोऽप्यर्थसिद्धो भवति । दशरात्रादिपूर्णाशौचकालात्ययकालश्चाशौचसंकोचे मुख्यो हेतुः । सोऽयमशौचकालात्ययश्चतुर्विंशतियोजनैस्त्रिंशद्योजनैश्चत्वारिंशद्योजनैः, षष्ठ्योजनैर्वा, अन्तरितत्वेन संभाव्यते इति सम्भवाभिप्रायेण तथा प्रतिनिर्दिश्यत इत्यूह्यम् । किञ्च समानदेशे देशान्तरे च भेदेनेयमाशौचव्यवस्था मैथिलग्रन्थानुरोधेनोक्ता। आर्षवचनानि तु सदेशविदेशाभ्यां पृथक् विभज्य नोपलभ्यन्ते । तस्मात स विभागश्चिन्त्यः । वस्तुतस्तु दशरात्रमध्ये यत्र वार्त्ता लभ्यते तत्र शेषाहाशौचमेव । दशरात्रोत्तरं तु वार्त्तालाभे संबन्धतारतम्यादशौचतारतम्य भवतीत्येव व्यवस्था इति देशान्तरलक्षणाधिकारः ॥

२६४—अष्टौ यस्य समाः पितुः स्वविषयेऽतीताः पुरः शिक्षया,
वेदाङ्गस्य च शिक्षया जयपुरेऽतीतास्ततोऽष्टौ समाः ।
यस्याष्टौ पुनरत्ययुः शिवपदे षट्शास्त्रशिक्षादिना,
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम् ॥ ॥

इति अतिक्रान्ताध्यायोऽष्टमः ॥ ८ ॥

६ अथ आशौचापवादाध्यायः ।

२९५—अथ कर्तृभेदात्, कर्मभेदात्, द्रव्यभेदात्, मृतदोषात्, वचनाच्चाशौचं क्वचिदपोद्यते । त एते पञ्चाधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ।

१ कर्तृभेदाधिकारः ।

(कर्तृविशेषादाशौचाभावः)

२९६—कर्त्तार इहाशौचग्रहीतृत्वेन विवक्षिताः । तेषां षड्विधाः स्ववैशेष्यादेव निमित्तादाशौचं नार्हन्ति । तथा हि ब्रह्मचारिणो वनस्थाः संन्यासिनश्चेति त्रिविधा भिन्नाश्रमा भिन्नाश्रमत्वादेव निमित्तादस्यामाशौचव्यवस्थायां नाधिक्रियन्ते । आशौचव्यवस्थाया गृहस्थाश्रमधर्माङ्गत्वात् । अथ कृतजीवच्छ्राद्धाः पतिताश्चेति द्विविधा धर्मच्युता गृहस्थत्वेऽपि स्वधर्मच्युतिहेतोरस्यामाशौचव्यवस्थायां नाधिक्रियन्ते । स्वधर्मस्थाधिकारेणाशौचव्यवस्थायाः प्रवृत्तत्वात् । अथान्यः षष्ठ आपन्नः । स च कष्टायामापदि स्वास्थ्यलाभादशक्तत्वादेवास्यामाशौचव्यवस्थायां नाधिक्रियते धर्मादेशस्य तदाचरणसमर्थाधिकारेण प्रवृत्तेः । तदित्थमेते षडप्यनधिकारिणो नाशौचमर्हन्तीति सिद्धम् । तेषां विभेदेन नियमा वक्ष्यन्ते ।

(१- ब्रह्मचारिणां यत्यादीनां चाशौचव्यवस्था)

२९७—नैष्ठिकानामुपकुर्वाणानां च ब्रह्मचारिणामनुपनीतानां च द्विजातिबालकानां स्पर्शाशौचं कर्माशौचं वा द्विविधमपि जन्माशौचं नास्ति ।

२९८—अथ ब्रह्मचारिणामनुपनीतानां च द्विजातिबालकानां सपिण्डमरणेऽपि नाशौचं नापि तन्निर्हारदाहाद्यौर्ध्वदेहिककर्मस्वेषामधिकारः ।

२९९—अथाज्ञानात् निर्हारदाहाद्यौर्ध्वदेहिके कर्मणि कथंचित् कृते सति तु ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयनं कृच्छ्रप्रायश्चित्तं चादिश्यते । किन्तु पितृमात्राचार्योपाध्यायमातामहानामन्तिमकर्मकरणेऽपि न ब्रह्मचारिणो दोषः । अत एव तत्र कृते सति दशाहं स्पर्शाशौचमनुवर्तते । कर्माशौचं तु नास्ति ।

३००—अन्ये त्वाहुः । मातापित्रादीनामन्तिमकर्मकरणेऽपि एकाहमेव स्पर्शाशौचं ब्रह्मचारिणो भवति न त्वधिकम् । किन्तु यद्यन्यदाशौचिनामन्नं भक्षयति तदेव ब्रह्मचारिणो दशाहाशौचप्राप्तिर्न त्वन्यथा । अन्त्यकर्माकरणे तु ब्रह्मचारिणः पित्रादिमरणेऽप्याशौचं नास्त्येवेति ।

३०१—पित्राद्याशौचेऽपि ब्रह्मचारी नाशौचिनामन्नं भक्षयेत्। भक्षणे तु पुनरुपनयनम्।

३०२—समावर्तनोत्तरं तु पूर्वमृतानां मातापित्रादीनां त्रिदिनमाशौचं ब्रह्मचारिणा कार्यम्। वानप्रस्थानां संन्यासिनां च किमप्याशौचं नास्ति। तेषामपि मरणे पूर्वसंबन्धिनां मातापित्रादीनामाशौचं नास्ति। तत्रेह संन्यासिपदेनैकदण्डिहंसपरमहंसा ग्राह्याः। त्रिदण्डिप्रभृतीनां तु यतीनां पृथङ् नियमा उक्ताः।

३०३—नैष्ठिकब्रह्मचारिणां चतुर्थाश्रमिणां च वानप्रस्थानां च ग्रामादौ भिक्षाग्रहणाय लब्धाधिकाराणां तथा अन्येषामपि सर्वप्रतिग्रहनिवृत्तानां भिक्षामात्रवृत्तीनां यतीनामाशौचिभिक्षाग्रहणे दोषो नास्ति। उपकुर्वाणब्रह्मचारिणां तु गृहस्थानामिवाशौचिगृहाद् भिक्षाग्रहणे दोषः स्यादेव। एवमन्येषामपि केषांचिद् प्राग् गृहीतनियमानां तत्तन्नियमानुरोधेनाशौचमवरुध्यते।

३०४—कृतजीवच्छ्राद्धेन किमप्याशौचं नानुरोध्यमिति हेमाद्रिः। कृतजीवच्छ्राद्धस्यापि योगाभ्यासमकुर्वतो गृहस्थवृत्ते रशौचमनुवर्तत एवेत्यन्ये। योगिनामेव तेषामशौचनिवृत्तेरौचित्यात्।

३०५—यस्य तु घटस्फोटः कृतस्तस्यान्यस्य च तथाविधस्य जातिबहिष्कृतस्य पतितस्याशौचं नास्ति।

३०६—आतुराणां स्वदेशभ्रष्टानां कष्टापद्ग्रस्तानामुपसर्गोपद्रवाद्यभिभूतानां च सद्यः शौचमाहुः। तत्रोपसर्गोऽत्यन्तनरकादिदैवभयम् उपद्रवस्तु स्वचक्रपरचक्रराष्ट्रभङ्गादिलोकभयम् तत्र विशेषविप्लवदशायामस्वस्थतायामशौचं नोपसर्पतीति दिक्। इतिकर्तृभेदाधिकारः।

२ कर्मभेदाधिकारः।

(१–कर्मविशेषादाशौचाभावः)

३०७—अथाशौचसम्बन्धप्रतिबन्धिविशेषवतामनन्यगतिकानामार्तिगृहीतानां च कर्मणां प्रारम्भे जाते तत्कर्मदीक्षान्वितानां गृहीतनियमानां नाशौचमुपसर्पतीति द्वितीयाधिकारः प्रवर्त्तते।

(२–तीर्थयज्ञविवाहादौ)

३०८—तीर्थे, यात्रायाम्, उत्सवे, युद्धे, व्रते, सत्रे, यज्ञे, विवाहे, श्राद्धे, प्रतिष्ठायाम्, यजने, होमे, अर्चने, जपे, दाने, संस्कारे, तत्साधर्म्यमिति चान्यत्रापि नियतकालकर्तव्ये कर्मविशेषे समारब्धासमाप्ते सति तत्राधिकृतानां दीक्षितानाम्, ऋत्विजां, सत्रिणां, व्रतिनां–तथा राज्ञां, राजवत् संभ्रान्तानां राजभृत्यानां तथैव भिषजां, कारूणां, शिल्पिनां, ग्रामसाधारणकर्मकरभृत्यानां, चाशौचसङ्कोचो भवति। विशेषकर्मानुरोधात्। तत्रैते विशिष्य नियमा ज्ञातव्याः।

३०९—अपूर्वतीर्थविशेषे प्राप्तौ सत्यां तन्निमित्तकावश्यकस्नानदानादिकर्मणि तीर्थादि-विशिष्टयात्रायां पूर्वप्रक्रान्तायां रथयात्राद्युत्सवसमारम्भे युद्धे च प्रवृत्ते नाशौचं सज्जते।

३१०—कृच्छ्रचान्द्रायणादिव्रते, अन्नसत्रादिलघुसत्रे, दर्शपौर्णमासादियज्ञे, नगरदेवालयादिप्रतिष्ठाकर्मणि, तड़ागोत्सर्गकोटिहोमादियजने, होमे, अर्चने, पुरश्चरणस्तोत्रपाठादिजपकर्मणि, अविच्छेदेन सङ्कल्पितहरिवंशपारायणादिश्रवणकर्मणि व्रतबन्धोपनयनचूड़ाकर्मादिसंस्कारकर्मणि, विवाहे श्राद्धकर्मणि, आतुरव्याधिनाशार्थकतुलापुरुषादिदानकर्मणि—चारब्धासमाप्ते यद्यन्तरा सूतकं मृतकं वा श्रूयते तदा तदारब्धकर्मणो निवृत्तिर्नास्ति। न वा तत्कर्मकर्तृभिस्तदाशौचमनुरोध्यम्। तदितरकर्मसु तु तदाशौचानुरोधः स्यादेव। भगवान् यमस्त्वाह—आशौचवता क्रियमाणे कर्मणि यदि किञ्चिद्दैवं भयमुत्तिष्ठते, प्रधानाङ्गं वा तत्र विनाशमाप्नोति, तदात्वे तदाशौचप्रयुक्तकर्मप्रतिरोध एव कार्य्यः। आशौचनिवृत्तौ पुनः कुर्वीत। अथ व्रताद्यारम्भात् प्रागेव तु श्रवणे तदाशौचानुरोधात् करिष्यमाणानामेषां व्रतादीनामपि यावदाशौचं निवृत्तिः स्यात्। व्रताद्यारम्भसमयस्त्वित्थं स्मर्यते।

प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः। (जापयोः)
नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥
निमन्त्रणं तु वा श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः।

इह वरणशब्देन प्रार्थनामारभ्य मधुपर्कग्रहणान्तं कर्म ज्ञेयम्। न तु प्रार्थनामात्रम्। मधुपर्कग्रहणोत्तरमेवाशौचाभावस्य सिद्धान्तात्। अत एवाधानेष्टिपशुबन्धादौ यत्र न मधुपर्कविधिस्तत्र सत्यपि प्रार्थनात्मके वरणेऽशौचं प्राप्नोत्येव एवं प्राप्ताशौचा ऋत्विजस्त्यज्यन्ते। अन्ये पुनर्व्रियन्ते। यत्र वा यज्ञे दीक्षाविधिस्तत्र दीक्षणीयेष्ट्यनन्तरमशौचाभाव इत्यवधेयम्। समाप्तिस्तु यज्ञेऽवभृथस्नानम्। अन्यत्र विसर्जनादयो लोकप्रसिद्धास्तत्र तत्र ते तेऽर्थाः प्रकरणाद् ग्राह्याः।

३—आगमोक्ते स्मार्ते वा कर्मणि।

३११—आगमोक्तकाम्यपूजनादिनियमे तु प्रक्रान्ते यद्याशौची स्यात् तदा मानस्या प्रक्रियया ध्यानयोगात् मन्त्रस्मरणपूर्वकं सर्वमावृत्तं सम्पादयेत्, न मन्त्रमुच्चारयेत्। निष्काम पूजनादिनियमे तु प्रक्रान्ते नाशौचानुरोधं कुर्यात्। सर्वं पूर्ववदाचरेत्।

३१२—स्मार्तं कर्म द्वेधा-त्याज्यमत्याज्यं च। तत्र यत् त्याज्यं तदाशौचे प्राप्ते सन्त्यजेत्। आशौचनिवृत्तौ पुनः कुर्यात्। अथ यदत्याज्यं तदाशौचे प्राप्ते सत्यसगोत्रेण कारयेत्।

यावदाशौचं स्वयं न कुर्यात् । कचिद्वा होमादौ कर्मविशेषे कर्तव्यतया नियते सत्यकृतान्नेन व्रीह्यादिना, कृताकृतान्नेन तन्दुलादिना वा, फलेन वा तत्कर्म कुर्यात् कारयेद्वा अनियते तु न कुर्यात् ।

३१३—श्रौतेऽप्येवं नियमानियमतो व्यवस्था । तेन येषां बह्वृचादीनां दशरात्रमहोमेऽपि नाग्निविच्छेदः कल्पेभ्युपगम्यते, तैरशौचे प्राप्तेऽग्निहोमो न कार्यः । आशौचोत्तर पुनस्तत्रैवाग्नौ होमसिद्धिर्न तु पुनराधानाद्यावश्यकता । अथ तैत्तिरीयादीनां येषां चतूरात्रमहूयमानोऽग्निर्लौकिकः सम्पद्यते तेषां होमनियमाच्छुष्कान्नेन फलादिना वा तत् कर्मकुर्यादेवेति सिद्धान्तः । समारूढे त्वग्नौ तैरपि होमो न कार्यः । किन्तु पुनराधानमेव तत्र कृत्वा होमादि कुर्यात् ।

४—आशौचे श्राद्धपाते ।

३१४—प्रेतश्राद्धप्रतिसांवत्सरिकश्राद्धयोराशौचकालमध्ये प्राप्तौ सत्यां तदाशौचे व्यतीते सत्याशौचान्तद्वितीये दिने प्रशस्तकालोपलक्षिततिथौ वा कार्यम् । तस्मिन्नपि दिने मलमासादिविघ्ने प्राप्ते मलमासाव्याप्तायामनन्तरकृष्णैकादश्यामेव कार्यम् ॥ १ ॥ समयप्रकाशकारस्तु मलमासेऽप्यशौचकालिकप्रथमतिथावेव कार्यमित्याह । आशौचेन सांवत्सरिकप्रतिरोधेऽशौचान्ते मलमासेऽपि कर्तव्यमिति कृत्यसारसमुच्चयकारोऽमृतनाथो मैथिलोऽप्याह ।

प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमाशौचोत्पतितं च यत् ।
मलमासेऽपि कर्त्तव्यमिति भागुरिरब्रवीत् ॥

इति वचनं च तत्रोष्टम्भकतया प्रदर्शयति ॥ २ ॥ एतच्चान्ये बहवो गौडा द्रविडा वा नानुमोदन्ते । आशौचेन तुल्यन्यायान्मलमासस्यापि कर्मप्रतिबन्धकत्वौचित्यात् ।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् ।
इष्टं वाप्यथवा पूर्तं तन्न कुर्यान्मलिम्लुचे ॥

इतिस्मरणाच्च॥३॥तथा चेदृशविप्रतिपत्तिस्थाने देशाचारात् कुलाचाराद्वा व्यवस्था नेया॥४॥ अथ पुनरपि यद्याशौचान्तरपातः स्यात् तदा तदशौचेऽपि व्यतीते सति तत्कार्यम् ॥ ५ ॥

३१५—शूद्रस्य तु त्रिंशद्दिवसाशौचमध्ये प्रथममासिकप्राप्तौ तच्छ्राद्धमनन्तरकृष्णैकादश्यामेव कार्यम् नत्वशौचान्तदिने । अथ कृष्णैकादश्यामपि करणाशक्तौ द्वितीयमासिकदिने प्रथममासिकविधानाभावात् कृष्णैकादश्यामेव तन्मासिकद्वयमेकत्र कार्यम् ।

५—आशौचे सन्ध्यावन्दनम् ।

३१६—सन्ध्यावन्दनादिनित्यकर्मणस्त्वशौचे प्राप्ते केनचिदंशेन त्यागोऽत्यागश्च

विधीयते। तथा हि प्राणायामादिविशिष्टस्य निर्दिष्टरूपस्य तु तस्य परित्याग एव। मानसी तु सन्ध्या कुशवारिविवर्जिता न कदाचित्परित्याज्या। तत्र प्राणायामं त्वमन्त्रकं कुर्याद्वा न कुर्याद्वा। मार्जनमन्त्रं मनसोच्चार्य मार्जयेत्, मार्जनं न कुर्याद्वा। अर्घ्यन्तु सूर्याय गायत्रीं सम्यगुच्चार्य निवेदयेत्। प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन् नमस्कुर्यात्, उपस्थानं तु न कुर्यात्। गायत्रीमन्त्र-जपं मानसं कुर्यात्, न कुर्याद्वेति विकल्पः। सैषा मानसी सन्ध्या भवति। तत्र जलेन सूर्यार्घदानं सावित्र्याः सम्यगुच्चारणं च कल्पसिद्धमपि नाचरन्ति बहवः शिष्टाः।

३१७—राज्ञां राजकर्मणि, राजभृत्यानां राजाज्ञासाधने भिषजां भैषज्ये, शिल्पिनां कारूणां दासीदासानां च प्रतिनियतेष्वेव केषुचित् स्वस्वकार्येषु शिल्पादिषु अस्पृश्यत्वादिलक्षणाशौचं नास्ति। तत्राभिषिक्तक्षत्रिया ऐन्द्रस्थानोपसन्ना राजानः। नानाद्रव्यगुणादिविद्यानिष्णाताश्चिकित्साप्रवणा भिषजः। द्रव्योत्पादकाः सूपकारादयः कारवः। द्रव्ये गुणोत्पादकाश्चित्रकाररजकादयः शिल्पिनः। इतरसाधारणा असाधारणा वा नापितादयो दासीदासाः। कर्मविशेषेष्वेवाशौचप्रतिषेधादन्यत्र सन्ध्यावन्दनाद्यदृष्टकर्मसु दानश्राद्धादिधर्मकृत्येषु चैषां स्वस्वजात्युक्तमशौचमवतिष्ठत एव।

३१८—अशौचिगृहे आशौचोपधायककर्मविशेषे नियुक्ता अप्येते भिषजः शिल्पिनः, कारवो दासीदासाश्चान्यत्र पुनरन्येषां देवकार्यादौ तत्तद्भिषगादियोग्यकर्मसु वा यथेच्छं नियोक्तुं शक्यन्ते। संसर्गाशौचस्य एतेष्वनभ्युपगमात्॥

६—भोजनकाले आशौचप्राप्तौ।

३१९—भोजनकाले तु भुञ्जानस्याशौचप्राप्तौ तं ग्रासं भूमौ निक्षिप्य स्नात्वा शुध्येत तद्ग्रासभक्षणे त्वहोरात्रेण शुद्धिः। अथाशौचं श्रुतमगणयित्वा यदि तत्सर्वमेवान्नमश्नीयात्तदास्य त्रिरात्रेण शुद्धिः। अत्र कर्मणः प्रारब्धापरिसमाप्तत्विचारोऽशौचसंकोचको नाभ्युपगम्यते इति दिक्। इति कर्मभेदाधिकारः।

३—द्रव्यभेदाधिकारः।

१—आशौचिनः पण्याद्वस्तुग्रहणे—

३२०—पण्याधिष्ठातुरशौचित्वे पण्ये प्रसारितानां सर्वेषामेव द्रव्याणां पण्याधिष्ठात्रनुज्ञया स्वहस्तेन ग्रहणे दोषाभावः। तथाविधपण्याधिष्ठातृहस्ताद् ग्रहणे तु ग्रहीतरि तदशौचं संक्रमते। द्रव्यं च तद् दुष्टं देवकर्मणि नोपयुज्यते।

२—दध्यादिद्रव्यविशेषे ।

३२१—दधि-मधु-घृत-क्षीर-मद्य-मांसानि लवणं जलं तृणकाष्ठ शाकफलमूलपुष्पाणि तिलमौषधमजिनं पुस्तकादिकं च एतान्यशौच्यधिष्ठितानि स्वहस्ताद् ग्राह्याणि । अशौचिहस्ताद् ग्रहणे तु तदशौचं ग्रहीतरि सङ्क्रमते । द्रव्यं च तद् दुष्टमकर्मण्यम् ।

३२२—अपक्वं तन्दुलादिद्रव्यम् । पक्वं मोदकलड्डुकादि । एतदुभयमन्नसत्रप्रवृत्तानामशौचिनामपि तदशौचिहस्तसम्पर्कव्यतिरेकेण स्वहस्ताद् ग्राह्यम् । अन्नसत्रादन्यत्र तु तदशौचिपक्वान्नं मोदकादिकं भुक्त्वा त्रिरात्रव्रतेन शुध्यति ।

३२३—उभाभ्यां भोजयितृभोक्तृभ्यां दातृग्रहीतृभ्यां वा व्यवहर्तृभ्यामपरिज्ञाते त्वशौचे तदशौच्यन्नं भुक्तवतोऽपि न दोषः । आशौचसंक्रमणे ज्ञानस्यैव निमित्तत्वात् । तयोरेकेनाप्यशौचे परिज्ञाते तु भोक्तरि दोषः संक्रमते ।

३—विवाहादौ भोजने ।

३२४—विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रवृत्तेषु यद्यन्तरा सूतकं मृतकं वा जायते तदाशौचिभिन्नगोत्रैः परैरन्नं तदशौचिहस्तासंपृक्तं प्रदातव्यम् । तत्र पूर्वसंकल्पितान्ने दोषाभावात् नान्नभक्षणे भोक्तॄणां ब्राह्मणानां दोषाप्रसक्तिः ।

४—भोजनमध्ये आशौचप्राप्तौ ।

३२५—अथ भुञ्जानेषु ब्राह्मणेषु भोजनार्धे भुक्ते सत्यन्तरा सूतके मृतके वा प्राप्ते सद्योच्छिष्टशेषं त्यक्त्वोत्थिता अन्यगेहे परकीयेन जलेनाचान्तास्ते ब्राह्मणा न दुष्यन्ति । अथ तत्रैवाशौचिनो गृहे कृताचमनानां तु दोषः स्यादेव । इति द्रव्यभेदाधिकारः ॥

४—मृतदोषाधिकारः ।

१—अपमृत्युमरणादौ पातकिमरणादौ चाशौचाभावः ।

३२६—यादृशेभ्यः प्रेतेभ्यः प्रदीयमानमुदकं पिण्डदानं वा केवलमन्तरीक्षे विलीयते न तु प्रेतेभ्य उपतिष्ठते ते प्रदर्श्यन्ते ।

३२७—यो हि महापातकी गलत्कुष्ठी । यो वा कण्ठदेशोत्पन्नभगरोगः स्यात् । यो वा चर्मास्थ्यादिमयपात्रनिर्माता ब्राह्मणादिः स्यात् । यो वा पुंकर्मासक्तनपुंसकः स्यात् । यो वा व्याधिजनकौषधदाता, विषदाता, अग्निदाता वा स्यात् । यो वा मनुष्यवधस्थानाधिकारी स्यात् ।

एवंविधानां पातकिनां कालमृतानामपि न दाहो न श्राद्धं नाप्याशौचं प्रकल्प्यते। तत् कृत्वा तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यात्।

३२८—अथ यदि शृङ्गिनख्यादिपशुभिः स्त्रिया वा सह क्रीडां कुर्वन् प्रमादतो म्रियमाणः स्यात्। यदि वा मरणोद्देशप्रवृत्तो विद्युद्धतः स्यात्। यदि वा पाषण्डाश्रयितया नित्यपरद्वेषितया वा क्रोधादिना वा स्वयं प्रायविषाग्न्यादिशस्त्रोद्बन्धनजलगिरितरुप्रपतनादिप्रयोगेण म्रियमाणः स्यात्। यथाकथञ्चिद्वा शास्त्राननुमतं बुद्धिपूर्वकमात्मघाती स्यात्। तत् कृत्वा तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यात्।

३२९—अथ यो ब्राह्मणविषयापराधकरणान्निहतः स्यात्। यो वा बुद्धिपूर्वकं ब्राह्मणेन हतः स्यात्। परदारान् हरन् द्वेषात् तत्पतिभिर्निहतः स्यात्। यो वा चौर्यादिदोषेण राज्ञा हतः स्यात्। यो वा कलहं कुर्वाणो विप्रादिः कदाचिदसमानवर्णैश्चाण्डालाद्यैर्निहतः स्यात्। यो वा नागप्रियकारितया नागहतः स्यात्। एवंविधानां विशिष्टदोषनिमित्तकमृत्युमतामपि न दाहो न श्राद्धं नाप्याशौचं प्रकल्प्यते तत् कृत्वा तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यात्।

३३०—एतत्सर्वमवैधे दर्पकृते च मृत्युनिमित्ते कर्मणि द्रष्टव्यम्। वैधे प्रमादकृते वा मरणे तु तेषामशौचमौर्ध्वदैहिकादिकं च सर्वं यथायथमस्त्येव। एवमेव कृतप्रायश्चित्तस्य गलत्-कुष्ठिनोपि दाहाशौचादिकं भवत्येव। तथा युद्धे स्वाम्यर्थं म्लेच्छतस्करादिभिरपि निहतस्य विप्रादेर्दाहाशौचादिकं भवत्येव। युद्धे शस्त्रेणाभिमुखहतस्य दाहादिकं प्रवर्त्तते सद्यः शौचं च। गोविप्रपालनेऽभिमुखयुद्धे हतस्य सद्यः शौचम्। पराङ्मुखहतस्य तु तस्य त्रिरात्रम्। गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा दण्डेन युद्धे हतस्याहोरात्रमाशौचम्। नृपतिरहितयुद्धे लगुडादिहतस्य च त्रिरात्रम्।

३३१—लौकिकपारिभाषिकोभयविधशस्त्रघातेतरघातेन तु सप्ताहमध्ये मरणे सर्ववर्णानां त्र्यहम्। सप्ताहादूर्ध्वं तु मरणे सति स्वजात्युक्तं संपूर्णाशौचमेव। लौकिकेन पारिभाषिकेण वा शस्त्रघातेन त्र्यहमध्ये मरणे त्र्यहाशौचम्, त्र्यहादूर्ध्वं तु मरणे सर्ववर्णानां स्वजात्युक्तं प्रकृताशौचमेव।

३३२—खड्गशरच्छुरिकादिघातो लौकिकशस्त्रघातः। वज्रपाताद्, वह्निदाहात्, जलप्रवेशात्, उच्चदेशप्रपतनात्, संग्रामात्, शृङ्गिनखिदंष्ट्रिव्यालादिघातात्, विषभक्षणात्, चौरचाण्डालादिभिर्घातात्, उद्बन्धनाद्वा, मरणं शास्त्राननुमतम्। अनशनादिमरणं च पारिभाषिकशस्त्रघातः। सेयं परिभाषा देवीपुराणे समाम्नाता। इति मृतदोषाधिकारः।

५—वचनाधिकारः ।

(वेदाग्निमदादिब्राह्मणादीनां वचनादाशौचाभावः)

३३३—साङ्गसार्थज्ञानवेदवतः श्रौतस्मार्त्ताग्निद्वयवतो वेदविहितसकलक्रियावतो विप्रस्य सपिण्डमरणादौ सद्यः शौचम् ॥ १ ॥ वेदार्थमविजानतस्तु साङ्गवेदवतोऽग्निद्वयवतः क्रियानिष्ठस्यैकाहः ॥ २ ॥ साङ्गसार्थज्ञानवेदवतोऽग्निद्वयवतोविहितैकदेशक्रियावतोऽप्येकाहः ॥ ३ ॥ साङ्गसार्थज्ञानवेदवतः स्मार्तैकाग्निमतः श्रौताग्निहीनस्य क्रियानिष्ठस्य त्र्यहः ॥४॥ वेदशून्यस्याग्निद्वयवतः क्रियानिष्ठस्य त्र्यहः ॥ ५ ॥ साङ्गसार्थज्ञानवेदनोऽप्यग्निद्वयहीनस्य चतुरहः ॥ ६ ॥ अङ्गानभिज्ञस्य वेदवतोऽग्निद्वयहीनस्य पञ्चाहः ॥ ७ ॥ वेदैकदेशाऽध्यायिनो अग्निद्वयहीनस्य षडहः ॥ ८ ॥ अनधीतवेदा अनग्नयो जातिब्राह्मणा ब्राह्मणब्रुवा इत्युच्यन्ते । तेषां दशाहमाशौचम् । अपकर्षकवेदाग्निशून्यतया तत्रापवादाप्रसक्तावौत्सर्गिकाशौचप्रवृत्तेर्निराबाधात् ॥ ६ ॥ सर्वे चैते सद्यः शौचादिका अपकर्षपक्षाः सपिण्डान्तराणामशौचिनां संसर्गाभावे सति बोध्याः । सति तु संसर्गे तेषां निमित्तिनामिवैषां वेदाग्निमतामप्यशौचं दशाहव्याप्यमेवोपधीयते । न त्वपकर्षः ।

३३४—संसर्गश्चात्रैकत्रशयनासनभोजनादिलक्षणो नवविधो द्रष्टव्यः । तानाह देवलः—

आलापस्पर्शनिश्वासात् सहयानासनाशनात् ।
याजनाध्यापनाद् यौनात् पापं संक्रमते नृणाम् ॥ इति

विशेषश्चात्र त्रिषष्टितमे प्रतिज्ञावाक्ये द्रष्टव्यः ॥

३३५—क्षत्रियस्य वेदाग्निमत्वे क्रियानिष्ठत्वे च दशाहो न तु द्वादशाहः ॥ १ ॥
वैश्यस्य वेदाग्निमत्वे क्रियानिष्ठत्वे च द्वादशाहो न तु पञ्चदशाहः ॥ २ ॥
श्रद्धया द्विजशुश्रूषां पञ्चयज्ञादीनि च शूद्रविहितकर्माणि नियमेन कुर्वाणस्य न्यायवर्तिनः शूद्रस्य पञ्चदशाह शौचं न तु मासम् ।

२-कर्मविशेषेष्वेवायमपवादो न सर्वत्र ।

३३६—सर्वं चैतदाशौचसंकोचविधानं प्रतिनियतेष्वेव होमाध्ययनादिकर्मस्वनुज्ञालाभार्थं बोध्यम् । न तु सन्ध्यावन्दने पञ्चमहायज्ञे, मृत्तिकाग्रहणमार्जन-प्राणायाम तर्पणाद्युपेतप्रधानक्रियारूपस्नानात्मकनित्यकर्मसु स्मार्तकर्मसु कुलान्नभोजने दानप्रतिग्रहयोः काम्यहोमस्वाध्यायादिषु चानुष्ठानानुज्ञानार्थमयमाशौचसङ्कोच उपकल्प्यते । तेनेदं दशाहाद्यासौचं कुलान्नभोजनादिनिवर्तकं स्वाध्यायहोमदानप्रतिग्रहादिविशिष्टकर्मप्रतिबन्धकमपि वेदाग्निमतां क्रियानिष्ठानां नित्यकर्त्तव्यस्य वेदाध्ययनाध्यापनाग्निहोत्रादिकर्मणः केवलमेकाहादिक्षणमत्यल्पकालमेव

प्रतिबन्धकं भवति न तु दशाहादिपर्यन्तमधिककालमित्येतावन्मात्रे तात्पर्यं नेयम् ।

३३७—यत्रापि वेदाग्निमतामघसंकोचो विहितस्तात्राप्याशौचे सत्यग्निमता श्रौताग्नौ शुष्कान्नेन फलेन वा होमः कार्यः । स्मार्त्ताग्नौ स्वकृतान्नेन कृताकृतान्नेन वा परद्वारा होमः कारयितव्यः । कृतान्नं तु परद्वारापि न हावयेत् । ओदनसक्तुलाजमोदकलड्डुकादिकं कृतान्नम् । तन्दुलमाषमुद्गादिक कृताकृतान्नम् । व्रीहियवगोधूमादिकं स्वकृतान्नम् ।

३—नाडीच्छेदात्प्राक् प्रतिग्रहादिकम् ।

३३८—कुमारप्रसवे नाडीच्छेदात्पूर्वं हिरण्यधान्यगोवस्त्रकम्बलादिप्रावरणतिलान्नगुडसर्पिषां दानं प्रतिग्रहं वा कुर्वन न दोषेण युज्यते ॥ १ ॥ पुत्रोत्पत्तौ नाडीच्छेदात् पूर्वं जातश्राद्धमप्यसिद्धान्नेन कुर्वन् न दुष्यति ॥ २ ॥ जननदिवसात् षष्ठेहनि च जन्मदानां षोडशमातॄणां षष्ठिकासहितानां रात्रियागं कुर्वन् न दुष्यति ॥ ३ ॥

३३९—जन्माशौचे मरणाशौचेऽपि वा स्थिते यदि पुत्रजन्म स्यात् तदा पुत्रजन्मनिमित्तकं जातेष्टिसंस्कारादिकं कुर्यादेव न त्वाशौचात्तन्निवृत्तिः ॥ ३ ॥

जन्माशौचे मरणाशौचेऽपि वा स्थिते यदि पित्रादिसपिण्डानां मरणं स्यात् तदा मरणनिमित्तकमन्त्येष्टिकर्मादिकं कुर्यादेव न त्वशौचात्तन्निवृत्तिः ॥ १ ॥

४—आशौचान्तरे सत्यपि पिण्डदानम् ।

३४०—प्रारब्धे प्रेतपिण्डे यदि मध्ये जननं स्यात् तदा शेषानप्याशौचपिण्डान् यथाविधि यथोपक्रमं दद्यादेव नत्वपूर्वाशौचात् तन्निवृत्तिः ॥

३४१—पित्राशौचमध्ये मातृमरणे पित्राशौचान्तरं पक्षिणीवृद्धिः पूर्वमाम्नाता, सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमे (२३७) प्रतिज्ञावाक्ये । तत्र तथाविधे मातुः पक्षिणीमध्ये पितुरेकादशाहश्राद्धं कुर्यादेव न त्वाशौचान्निवृत्तिरिति देवयाज्ञिकादयः प्राहुः । पक्षिणीपर्यन्ताशौचनिवृत्तौ सत्यां ततः पितुरेकादशाहनिमित्तकमाद्यश्राद्धं कुर्यादिति मिताक्षराकारादयः । तेनात्र विकल्पः । विकल्पे त्वाचाराद् व्यवस्था । एवमन्यत्रापि यथायथमूह्यम् ।

इतिवाचनिकाधिकारः ।

३४२—श्रीपूर्णस्य रमेश्वरस्य मिथिलाधीशस्य विद्यानिधे-
भूवृन्दारकवृन्दवन्दितपदस्यात्यन्तसन्तुष्टये ।
श्रीरैर्भारतधर्मसंग्रहपरैः संप्रार्थितो मैथिलः
सोऽयं श्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम् ॥१॥

इत्याशौचापवादाध्यायो नवमः ॥ ९ ॥

१०—अथ प्रमाणसंग्रहाध्यायः ॥

१—स्मृतिसंग्रहः ।

३४३—अत्राध्याये स्मृतिसंग्रहो, वचनसंग्रहो, नामसंग्रहश्चेति त्रयोऽधिकाराः प्रदर्श्यन्ते ।

(१) तत्राद्ये आशौचार्था विंशतिस्मृतयो यथा मनुस्मृतिः १, प्रक्षिप्तमनुस्मृतिः २, याज्ञवल्क्यस्मृतिः ३, पराशरस्मृतिः ४, बृहत्पराशरस्मृतिः ५, गौतमस्मृतिः ६, वशिष्ठस्मृतिः ७, दक्षस्मृतिः ८, शङ्खस्मृतिः ९, लिखितस्मृतिः १०, लघ्वत्रिस्मृतिः ११, अत्रिस्मृतिः १२, वृद्धात्रिस्मृतिः १३, यमस्मृतिः १४, संवर्त्तस्मृतिः १५, विष्णुस्मृतिः १६, औशनसस्मृतिः (६) १७, अङ्गिरसस्मृतिः १८ आपस्तम्बस्मृतिः १९, कात्यायनस्मृतिश्चेति २०, ।

(२) द्वितीये त्वधिकारे नानामुनिवचनानि २१, पुराणवचनानि २२, च संगृहीतानि ।

(३) तृतीये तु आशौचनिबन्धानां नामोल्लेखः कृतः इत्येवमादीन्यधिकरणान्यत्र भवन्ति ।

तत्रादौ मनुस्मृतिः—

३४४—प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ।
चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥
दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ।
अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥ २ ॥
दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
अर्वाक् संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ३ ॥
सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते ।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ४ ॥
यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् ॥ ५ ॥
सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ ६ ॥
निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्ध्यति ।
बैजिकादभिसम्बन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् ॥ ७ ॥

अन्हा चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ।
शवस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥ ८ ॥
गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ९ ॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति ।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ १० ॥
नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।
निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ११ ॥
ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः ।
अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥ १२ ॥
नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया।
अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥ १३ ॥
नात्रिवर्षस्य कर्त्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया ।
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥ १४ ॥
सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ।
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ १५ ॥
स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्ध्यन्ति बान्धवाः ।
यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्ध्यन्ति तु सनाभयः ॥ १६ ॥
अक्षारलवणान्ताः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम् ।
मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरँश्च पृथक् क्षितौ ॥ १७ ॥
सन्निधावेष वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्त्तितः।
असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः सम्बन्धिबान्धवैः ॥ १८ ॥
विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ १९ ॥
अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति ॥ २० ॥
निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ।
सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुद्ध्यति ॥ २१ ॥

बाले देशान्तरस्थे च पृथक् पिण्डे च संस्थिते ।
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥ २२ ॥
अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥ २३ ॥
त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ।
तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ २४ ॥
श्रोत्रिये तूपसम्पन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
मातुले पक्षिणी रात्रिः शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥ २५ ॥
प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितिः ।
अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥ २६ ॥
शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ २७ ॥
न वर्द्धयेदघाहानि प्रत्यूहे नाग्निषु क्रिया ।
न च तत् कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ २८ ॥
दिवाकीर्त्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा ।
शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥ २९ ॥
आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने ।
सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥ ३० ॥
नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥ ३१ ॥

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् ।
समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ३२ ॥

वृथासङ्करजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ।
आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्त्तेतोदकक्रिया ॥ ३३ ॥

पाखण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः ।
गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥ ३४ ॥

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ।
निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥ ३५ ॥

दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ।
पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ३६ ॥
न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ।
ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥ ३७ ॥
राज्ञो महात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते ।
प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्रकारणम् ॥ ३८ ॥
डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ।
गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ३९ ॥
सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ।
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ ४० ॥
लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते ।
शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥ ४१ ॥
उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च ।
सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ ४२ ॥
विप्रः शुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम् ।
वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥ ४३ ॥
एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः ।
असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ॥ ४४ ॥
असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ।
विशुद्ध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥ ४५ ॥
यद्यन्नमत्ति तेषान्तु दशाहेनैव शुद्ध्यति ।
अनदन्नन्नमह्नैव चेत्तस्मिन् गृहे वसेत् ॥ ४६ ॥
अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ।
स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४७ ॥
न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् ।
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥ ४८ ॥
ज्ञानं तपोग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जनम् ।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् ॥ ४९ ॥
सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥ ५० ॥

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥ ५१ ॥
मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुद्ध्यति ।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तम ॥ ५२ ॥
अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ ५३ ॥
एष शौचस्य वः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः ।
नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ॥ ५४ ॥

अथ मनुस्मृतौ क्षेपकवचनानि (२)

३५५—उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ।
दानं प्रतिग्रहो यज्ञः स्वाध्यायश्च निवर्त्तते ॥ १ ॥
जननेऽप्येवमेव स्यान्मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ २ ॥
प्राक्संस्कारप्रमीतानां वर्णानामविशेषतः ।
त्रिरात्रात्तु भवेच्छुद्धिः कन्यास्वह्नो विधीयते ॥ ३ ॥
आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतादेशात् दशरात्रमतः परम् ॥ ४ ॥
परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु प्रकृतेषु च ।
मातामहे त्रिरात्रं तु एकाहं त्वसपिण्डतः ॥ ५ ॥
परपूर्वासु पुत्रेषु सूतके मृतकेषु च ।
मातामहे त्रिरात्रं स्यादेकाहं तु सपिण्डने ॥ ६ ॥
मासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासे पक्षिणी तथा ।
अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः ।
श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ८ ॥

क्षत्रविट्शूद्रदायादाः स्युश्चेद्विप्रस्य बान्धवाः ।
तेषामशौचं विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ९ ॥
राजन्यवैश्ययोश्चैवं हीनयोनिषु बन्धुषु ।
स्वमेव शौचं कुर्वीत विशुद्ध्यर्थमिति स्थितिः ॥ १० ॥
विप्रः शुद्ध्येद् दशाहेन जन्महानौ स्वयोनिषु ।
षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥ ११ ॥
सर्वे चोत्तमवर्णास्तु शौचं कुर्युरतन्द्रिताः ।
तद्वर्णं विधिवद्दृष्टे न तु शौचं स्वयोनिषु ॥ १२ ॥

३४६—यानि वचनानि हेमाद्रिमाधवादिभिर्निबन्धकारैर्मनूक्तत्वेन स्वीक्रियन्ते किन्तु सम्प्रत्युपलब्धमुद्रितमनुस्मृतिपुस्तकेषु नोपलभ्यन्ते तानि आशौचविषयाणि प्रदर्श्यन्ते ।

३४७—मातुले श्वशुरे मित्रे गुरौ गुर्वङ्गनासु च ।
आशौचं पक्षिणीं रात्रिं मृता मातामही यदि ॥
श्वशुरयोश्च भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले ।
संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते ॥
संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ।
पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयन्निशाम् ॥
भगिन्यां संस्कृतायान्तु भ्रातर्यपि च संस्कृते ।
मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते ॥
श्यालके तत्सुते चैव सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ।
पित्रोरुपशमे स्त्रीणां मूढानां तु कथं भवेत् ॥
त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः ।
दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः ॥
शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते ।
श्वशूद्रपतिताश्चान्त्या मृताश्चेद् द्विजमन्दिरे ॥
शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा ।
दशरात्राच्छुनि मृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः ॥
द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्ये मासचतुष्टयात् ।
अत्यन्तं वर्जयेद् गेहमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥
द्विजस्य मरणे वेश्म विशुद्ध्यति दिनत्रयात् ।

ग्राममध्ये मृतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित् ।
ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचिता भवेत् ॥
ग्रामेश्वरे कुलपतौ श्रोत्रिये च तपस्विनि ।
शिष्ये पञ्चत्वमापन्ने शुद्धिर्नक्षत्रदर्शनात् ॥
महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः ।
वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते ॥
देशनामनदीभेदान्निकटेऽपि भवेद्यदि ।
तत्तु देशान्तरं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयंभुवा ॥
दशरात्रेण या वार्ता यत्र न श्रूयतेऽथवा ।

अथ याज्ञवल्क्यस्मृतिः (३) ।

३४८—ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः ।
आश्मशानादनुव्रज्य इतरो ज्ञातिभिर्मृतः ॥ १ ॥
यमसूक्तं तथा गाथा जपद्भिर्लौकिकाग्निना ।
स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्या वृतार्थवत् ॥ २ ॥
सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयन्त्यपः ।
अप नः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ ३ ॥
एवं मातामहाचार्यप्रेतानामुदकक्रिया ।
कामोदकं सखिप्रत्तास्वस्रीयश्वशुरर्त्विजाम् ॥ ४ ॥
सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण वाग्यताः ।
न ब्रह्मचारिणः कुर्युरुदकं पतितास्तदा ॥ ५ ॥
पाखण्ड्यनाश्रिताः स्तेनाः भर्तृघ्न्यः कामगादिकाः ।
सुराप्य आत्मत्यागिन्यो नाशौचोदकभाजनम् ॥ ६ ॥
प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शिनामपि ।
इच्छतां तत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां स्नानसंयमात् ॥ ७ ॥
आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती ।
संकटान्नं च नाश्नीयान्न च तैः सह संवसेत् ॥ ८ ॥
त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमिष्यते ।
ऊनद्विवर्षे उभयोः सूतकं मातुरेव हि ॥ ९ ॥



पित्रोस्तु सूतकं मातुस्तदसृग्दर्शनाद्ध्रुवम् ।
तदहर्न प्रदुष्येत पूर्वेषां जन्मकारणात् ॥ १० ॥
अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुद्ध्यति ।
गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः शुद्धेस्तु कारणम् ॥ ११ ॥
हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम् ।
प्रेषिते कालशेषः स्यात् पूर्णे दत्वोदकं शुचि ॥ १२ ॥
क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु ।
त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्धं न्यायवर्तिनः ॥ १३ ॥
आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ १४ ॥
अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् ।
गुर्वन्ते वास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥ १५ ॥
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।
निवासराजनि प्रेते तदहः शुद्धिकारणम् ॥ १६ ॥
ब्राह्मणेनानुगन्तव्यो न शूद्रो न द्विजः क्वचित् ।
अनुगम्याम्भसि स्नात्वा स्पृष्ट्वाग्निं घृतभुक् शुचिः ॥ १७ ॥
महीपतीनां नाशौचं हतानां विद्युता तथा ।
गोब्राह्मणार्थे संग्रामे यस्य चेच्छति भूमिपः ॥ १८ ॥
ऋत्विजां दीक्षितानां च यज्ञियं कर्म कुर्वताम् ।
सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा ॥ १९ ॥
दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे ।
आपद्यपि हि कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥ २० ॥
उदक्या शुचिभिः स्नायात् संस्पृष्टस्तैरुपस्पृशेत् ।
अब्लिङ्गानि जपेच्चैव गायत्रीं मनसा सकृत् ॥ २१ ॥
कालोऽग्निः कर्म मृद्वायुर्मनोज्ञानं तपो जलम् ।
पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽमी शुद्धिहेतवः ॥ २२ ॥
अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्याश्च शुद्धिकृत् ।
शोध्यस्य मृच्च तोयं च संन्यासो वै द्विजन्मनाम् ॥ २३ ॥

तपोवेदविदां क्षान्तिर्विदुषां वर्ष्मणो जलम् ।
जपः प्रच्छन्नपापानां मनसः सत्यमुच्यते ॥ २४ ॥
भूतात्मनस्तपोविद्ये बुद्धेर्ज्ञानं विशोधनम् ।
क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता ॥ २५ ॥

अथ पराशरस्मृतिः (४)

३४६—अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ।
दिनत्रयेण शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥ १ ॥
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकैः ।
शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥
उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिश्च जायते ।
ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥ ३ ॥
जातो विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥
जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः ।
नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकं भवेत् ॥ ६ ॥
अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका ।
दशरात्रेण संशुद्ध्येद् भूमिस्थं च नवोदकम् ॥ ७ ॥
एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः ।
जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥ ८ ॥
तावत् तत् सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ।
दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वात्मवंशजः ॥ ९ ॥
चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षण्निशाः पुंसि पञ्चमे ।
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥ १० ॥
भृग्वग्निमरणे चैव देशान्तरमृते तथा ।
बाले प्रेते च संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥ ११ ॥

देशान्तरमृतः कश्चित् सगोत्रः श्रूयते यदि ।
न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥
देशांतरगतो विप्रः प्रयासात् कालकारितात् ।
देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ १३ ॥
कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ।
उदकं पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥ १४ ॥
अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १५ ॥
यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः ।
यत्जन्मासं स्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥
आचतुर्थाद् भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ।
अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥
दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ।
अग्निसंस्कारणे तेषां त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ १८ ॥
आदन्तजन्मनः सद्यः आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥ १९ ॥
ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशनः ।
सम्पर्कं चेन्न कुर्वन्ति न तेषां सूतकं भवेत् ॥ २० ॥
सम्पर्काद् दुष्यते विप्रो जनने मरणे तथा ।
सम्पर्काच्च निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ २१ ॥
शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः ।
राजानः श्रोत्रियाश्चैव सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥
सव्रतो मन्त्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः ।
राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ २३ ॥
उद्यतो निधने दाने आर्तो विप्रो निमन्त्रितः ।
तदेव ऋषिभिर्दृष्टं यथाकालेन शुद्ध्यति ॥ २४ ॥
प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात्सङ्करं यदि ।
दशाहाच्छुद्ध्यते माता त्ववगाह्य पिता शुचिः ॥ २५ ॥

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्यं पिता शुचिः ॥ २६ ॥
यदि पत्न्यां प्रसूतायां सम्पर्कं कुरुते द्विजः ।
सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥ २७ ॥
सम्पर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोऽस्ति वै द्विजे ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पर्कं वर्जयेद् बुधः ॥ २८ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वं सङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २९ ॥
अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्दशम् ॥ ३० ॥
ब्राह्मणार्थं विपन्नानां बन्दीगोग्रहणे तथा ।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३१ ॥
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ ३२ ॥
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ।
पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्व्यां लभन्ति ते ॥ ३३ ॥
न तेषामशुभं किञ्चित् पापं वा शुभकर्मणाम् ।
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥ ३४ ॥
असगोत्रमबन्धुं च प्रेतीभूतं द्विजोत्तमम् ।
वहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ३५ ॥
अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३६ ॥
क्षत्रियं मृतमज्ञानाद् ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।
एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३७ ॥
शवं च वैश्यमज्ञानाद् ब्राह्मणो ह्यनुगच्छति ।
कृत्वाऽऽशौचं द्विरात्रं च प्राणायामान् षडाचरेत् ॥ ३८ ॥
प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ३९ ॥

त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥ ४० ॥
विनिवर्त्य यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः ।
द्विजैस्तदानुगन्तव्या एष धर्मः सनातनः ॥ ४१ ॥
तस्माद् द्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत् ।
दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥ ४२ ॥

अथ बृहत्पराशरस्मृतिः । (५)

३५८—अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शुद्धिं पाराशरोदिताम् ।
सूतकेऽप्यथवा शौचे यथावत्तां निबोधत ॥ १ ॥
प्रासवं सूतकं प्राहुः शावमाशौचमुच्यते ।
यावत्कालं च यन्मानं तथा तावन्निबोधतः ॥ २ ॥
केषांचित्तन्न वै स्यातां केषांचिन् मरणान्तिके ।
अपःशौचास्तथा चान्ये स्मृताश्चैकाह्निकाः परे ॥ ३ ॥
त्रिषड् दशद्वादशभ्यां दशभिः सह पञ्चभिः ।
तान्येव त्रिगुणान्याहुर्वेदन्त्येवं मनीषिणः ॥ ४ ॥
वक्ष्यमाणं निबोधध्वमुक्तकर्मामिदं बुधाः ।
शक्तिजो यन्मुनीन्द्राणां प्रागूचे किल धर्मवित् ॥ ५ ॥
विष्णुध्यानरतानां च सदैव व्रतचारिणाम् ।
गृहमेधिद्विजातीनां तथैव व्रतचारिणाम् ॥ ६ ॥
वेदतत्वार्थवेतॄणां नित्यस्नानकृतामपि ।
अनुसंसर्गिणामेषां नाशौचं नापि सूतकम् ॥ ७ ॥
संसर्गं वर्जयेद् यस्मात् संसर्गो दोषकारणम् ।
कुर्यान्नान्नादिसंसर्गं वर्जयन्स्यादकिल्विषी ॥ ८ ॥
वदन्ति मुनयः प्राच्याः संसर्गो दोषकारणम् ।
असंसर्गः स्वकर्मस्थो द्विजो दोषैर्न लिप्यते ॥ ९ ॥
दानोद्वाहेष्टिसंग्रामे देशविप्लवकादिषु ।
सद्यः शौचं द्विजातीनां सूतकाशौचयोरपि ॥ १० ॥

दातृणां व्रतिनामेके कवयः सुनृणामपि ।
सद्यः शौचमदोषाणामूचुर्धर्मविदः कलौ ॥ ११ ॥
सर्वमन्त्रपवित्रः स्यादग्निहोतृषडङ्गवित् ।
राजा च श्रोत्रियश्चैव सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥ १२ ॥
देशान्तरगते जाते मृते वापि सगोत्रिणि ।
(!) निवासे तु सद्यःशौचं विशोधनम् ॥ १३ ॥
सद्यः शौचं विधातव्यमर्वाग्वा दन्तजन्मनः ।
बान्धवादिषु विज्ञेयमन्यदूर्ध्वं विधीयते ॥ १४ ॥
नाशौचसूतके स्यातां नृपतीनां कदाचन ।
यज्ञकर्मप्रवृत्तस्य ऋत्विजां दीक्षितस्य च ॥ १५ ॥
पृथक् पिण्डे मृते बाले निर्दशेऽन्यत्र च श्रुते ।
जातेनापि विशुद्धिः स्यात्सद्यः शौचादसंशयम् ॥ १६ ॥
सवेदः साग्निरेकाहाद् ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नुयात् ।
तथैकाहो नृपे संस्थे तथैव ब्रह्मचारिणि ॥ १७ ॥
दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च विपत्काल उपस्थिते ।
उपसर्गमृते चापि सद्यः शौचं विधीयते ॥ १८ ॥
गोद्विजार्थे विपन्नानामाहवेषु गतायुषाम् ।
ते योगिभिः समा ज्ञेयाः सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥ १९ ॥
विप्रे संस्थे व्रतादर्वाक् श्रोत्रिये च द्विजे मृते ।
अनूचाने गुरौ चैव आचार्ये चापि संस्थिते ॥ २० ॥
स्त्रीणामसंस्कृतानां च श्रोत्रिये च नृपे मृते ।
त्रिरात्रमेव शौचं स्यात्तथैवोदकदायिनाम् ॥ २१ ॥
विद्वाननग्निको विप्रस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ।
मनीषिणोऽपरे ब्रूयुरसपिण्डे त्र्यहं त्र्यहम् ॥ २२ ॥
प्रेतीभूतं च यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ २३ ॥
षड्रात्रं नवरात्रं च शवस्पृशां विशुद्धिकृत् ।
त्र्यहं चैव विशुद्ध्यर्थं धर्मशास्त्रविदो विदुः ॥ २४ ॥

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ।
पदे पदे यज्ञफलमनुपूर्वं लभन्ति ते ॥ २५ ॥
अशुचित्व न तेषां तु पापं वाऽशुभकारणम् ।
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शुद्धिः प्रकीर्तिता ॥ २६ ॥
असगोत्रमसम्बन्धं प्रेतभूतं तथा द्विजम् ।
ऊढ्वा दग्ध्वा द्विजा सर्वे स्नातास्ते शुचयः स्मृताः ॥ २७ ॥
एकरात्रं वदन्त्येके सद्यः स्नानमथापरे ।
गोगृहादिमृतानां च मुनयः शुद्धिकारणम् ॥ २८ ॥
हतः शूरो विपद्येत शत्रुभिर्यत्र कुत्रचित् ।
स मुक्तो यतिवत् सद्यः प्रविशन्परवेधसि ॥ २९ ॥
संन्यासी संस्थितो योगी संमुखो यो रणे हतः ।
सूर्यमण्डलभेत्ताराविति प्राहुर्मनीषिणः ॥ ३० ॥
पराङ्मुखे हते सैन्ये यो युद्धाय निवर्तते ।
तत्पदानीष्टतुल्यानि स्युरित्याह पराशरः ॥ ३१ ॥
वदने प्रविशेद्येषां लोहितं शिरसः पतत् ।
सोमपानेन तत्तुल्या बिन्दवो रुधिरस्य वै ॥ ३२ ॥
संन्यासेन मृता ये स्युर्ये संग्रामे तनुत्यजः ।
युक्तिभाजो नरास्ते स्युरिति वेदोऽपि कीर्तयेत् ॥ ३३ ॥
सद्यः शौचं विधातव्यं शुद्धिरेवं विधीयते ।
तेनोच्यन्ते मृता लोकाः साद्या ब्रह्मवपुर्गताः ॥ ३४ ॥
सन्ध्याचारविहीनानां सूतकं ब्राह्मणब्रुवाम् ।
अशौचं द्वादशाहं स्यादिति पाराशरो ब्रवीत् ॥ ३५ ॥
राज्ञां च द्वादशाहं तु पक्षो वैश्यस्य पावनः ।
वृषलस्य तथा मासः त्र्यहादेष्वपि धर्मतः ॥ ३६ ॥
क्षपा च पक्षिणी सद्भिः मातुलादिषु कीर्तिता ।
गर्भस्रावे च पाते च रात्रयो माससम्मिताः ॥ ३७ ॥
स्रावं गर्भस्य विद्वांसो मासादर्वाक् चतुर्थकात् ।
पातमूर्द्ध्वं वदन्त्येते तत्राधिकं च सूतकम् ॥ ३८ ॥

ऋणग्रस्तनिरागारपराधीनकदर्यकाः ।
तृष्णावन्तो निराचाराः पितृमातृविवर्जिताः ॥ ३९ ॥
स्त्रीजिताश्चानपत्याश्च देवब्राह्मणवर्जिताः ।
परद्रव्यग्रहस्वान्ताः सदा सूतकिनः स्मृताः ॥ ४० ॥
सूतके सत्यशौचे वा अन्यदापद्यते यदि ।
पूर्वेणैव तु शुद्ध्येत जाते जातं मृते मृतम् ॥ ४१ ॥
एकपिण्डाश्च दायादाः पृथक्कृतनिकेतनाः ।
जन्मन्यपि मृते वापि तेषां वै सूतकं भवेत् ॥ ४२ ॥
भृगुवह्निप्रपाते च देशान्तरमृतेषु च ।
बाले प्रेते च संन्यासे सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४३ ॥
अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिर्गताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ ४४ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वसंकल्पितानर्थान्भोज्यान्तानब्रवीन् मनुः ॥ ४५ ॥
शिल्पिनः कारुकाश्चैव दासीदासास्तथैव च ।
इत्यादीनां न ते स्याताम‍नुगृह्णन्ति यान् द्विजाः ॥ ४६ ॥
पिता पुत्रेण जातेन दद्याच्छ्राद्धं यथाविधि ।
तत्राप्यनन्तकं दानं कर्तव्यं पुत्रजन्मनि ॥ ४७ ॥
प्रसवे च द्विजातीनां न कुर्यात्संकरं यदि ।
दशाहाच्छुद्ध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥ ४८ ॥
अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदि वा भयात् ।
उद्बध्य म्रियते यस्तु न तस्याग्निः प्रदीयते ॥ ४९ ॥
न स्नायान्नोदकं दद्यान्नापि कुर्यादशौचताम् ।
सर्पेण शृङ्गिणा वापि जलेन वह्निना तथा ॥ ५० ॥
न स्नानादौ विपन्नस्य तथा चैवात्मघातिनः ।
अर्वाग्वै हायनादग्निर्नैव दद्यान्मृतस्य च ॥ ५१ ॥
किन्तु तान्निखनेद् भूमौ कुर्यान्नोदकक्रियाम् ।
षण्मासे तु गते कार्या मुनिः प्राह पराशरः ॥ ५२ ॥

सर्पादिप्राप्तमृत्यूनां वह्निदाहादिकाः क्रियाः ।
शास्त्रदृष्टं द्विजैः कार्यमस्थिसंचयनादिकम् ॥ ५३ ॥
तत्कृत्वा त्यक्तदिवसे शुद्धिमर्हति धर्मतः ।
अन्यायमृतविप्राणां ये वोढारो भवन्ति हि ।
अग्निदाश्चैव ये तेषां तथोदकादिदायिनः ॥ ५४ ॥
उद्बन्धने मृतस्यापि यश्छिन्द्यात्पाशरज्जुकम् ।
सर्वे ते पापसंयुक्ताः प्रायश्चित्तस्य भाजनाः ॥ ५५ ॥
सूतकाशौचयोरुक्ता शुद्धिर्यथानुपूर्वशः ।

अथ गौतमस्मृतिः ॥ [६]

३५१—शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग् दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिण्डानामेकादशरात्रं, क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं, वैश्यस्यार्द्धमासमेकमासं शूद्रस्य । तच्चेदन्तः पुनरापतेतच्छेषेण शुद्ध्येरन्, रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः । गोब्राह्मणहतानामन्वक्षं राजक्रोधाच्च युद्धे प्रायोनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम् पिण्डनिर्वृत्तिः सप्तमे पञ्चमे वा । जननेऽप्येवं मातापित्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रिः स्रंसने गर्भस्य त्र्यहं वा श्रुत्वा चोर्द्ध्वं दशम्याः पक्षिणी असपिण्डे योनिसम्बन्धे सहाध्यायिनि च सब्रह्मचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपपन्ने प्रेतोपस्पर्शने दशरात्रमशौचमभिसंधापयेत् । उक्तं च वैश्यशूद्रयोः-आर्तवीर्वा पूर्वयोश्चाहं वा आचार्यस्तत्पुत्रस्त्रीयाज्यविशेषेषु चैव अवरश्चेद्वर्णः पूर्ववर्णमुपस्पृशेत् पूर्वोवावरं तत्र शावोक्तमाशौचं पतितचण्डालसूतिकोदक्य शवस्पृष्टि तत्स्पृश्युपस्पर्शने सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुद्ध्येत् । शवानुगमिनः शुनश्च यदुपहन्यादित्येके उदकदानं सपिण्डैः कृतचूडस्य तत् स्त्रीणां चानतिभाग एके प्रेतानामधःशय्यासनिनो ब्रह्मचारिणः सर्वे न मार्ज्जयेरन् न मांसं भक्षयेयुराप्रदानात् प्रथमतृतीयसप्तमनवमेषूदकक्रिया वाससां च त्यागः । अन्त्ये त्वन्त्यानां दन्तजन्मादि मातापितृभ्यां तु माता, बालदेशान्तरति प्रव्रजितासपिण्डानां सद्यः शौचं राज्ञां च कार्यविरोधात् ।

अथ वसिष्ठस्मृतिः ॥ [७]

३५१—उदकक्रियामशौचं-द्विवर्षात्प्रभृतिमृत उभयं कुर्यात् । दन्तजननादित्येके शरीरमग्निना संयोज्य अनवेक्षमाणा अपोऽभ्यवयन्ति । ततस्तत्रस्था एव सव्येतराभ्यां पाणिभ्यामुदकक्रियां कुर्वन्ति । अयुग्मा दक्षिणामुखाः पितॄणां वा एषा दिक् या दक्षिणा गृहान् व्रजित्वा

स्वस्तरे त्र्यहमश्नत आसीरन् अशक्तौ क्रीतोत्पन्नेन वर्तेरन् । दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । मरणात्प्रभृति दिवसगणना सपिण्डता सप्तपुरुषं विज्ञायते अप्रत्तानां स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते प्रत्तानामितरे कुर्वीरन् ताश्च तेषां जननेऽप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रोर्बीजानि निमित्तत्वात्–अथाऽप्युदाहरन्ति ।

नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति ।
रजस्तत्राशुचिर्ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ॥ १ ॥
ब्राह्मणो दशरात्रेण पञ्चरात्रेण भूमिपः ।
वैश्यः विंशतिरात्रेण शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ २ ॥
अशौचे यस्तु शूद्रस्य सूतके वापि भुक्तवान् ।
स गच्छेन्नरकं घोरं तिर्यग्योनिषु जायते ॥ ३ ॥
अनिर्दशाहे पक्वान्ननियोगाद्यस्तु भुक्तवान् ।
कृमिर्भूत्वा स देहान्ते तद्विधामुपजीवति ॥ ४ ॥

द्वादशमासान्द्वादशार्द्धमासान्वाऽनश्नन्संहितामधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते । ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सपिण्डानां त्रिरात्रमाशौचं सद्यः शौचमिति गौतमः । देशान्तरस्थे प्रेते ऊर्ध्वं दशाहाच्चैकरात्रमाशौचं आहिताग्निश्चेत्प्रवसन्म्रियते पुनः संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः । भूपयतिश्मशानरजस्वलासूतिकाशुचीनुपस्पृश्य सशिरा अभ्युपेयादपः ।

अथ दक्षस्मृतिः ॥ [८]

३५३—अथाशौचं प्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युनिमित्तकम् ।
यावज्जीवं तृतीयं तु यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥
सद्यः शौचं तथैकाहो द्वित्रिचतुरहस्तथा ।
षट् दश द्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ २ ॥
मरणान्तं तथा चान्यद्दशपक्षास्तु सूतके ।
उपन्यासक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥ ३ ॥
ग्रन्थार्थतो विजानाति वेदमङ्गैः समन्वितः ।
सङ्कल्पं सरहस्यं च क्रियावांश्चेन्न सूतकी ॥ ४ ॥

राजर्विग्दीक्षितानां च बाले देशान्तरे तथा ।
व्रतिनां सत्रिणां चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५ ॥
एकाहस्तु समाख्यातो योऽग्निवेदसमन्वितः ।
हीने हीनतरे चैव त्र्यहश्चतुरहस्तथा ॥ ६ ॥
जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
अस्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्वा हुत्वा च भुंजते ।
एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥ ८ ॥
व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रातस्य सर्वदा ।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ ९ ॥
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ।
श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत् ॥ १० ॥
न सूतकं कदाचित्स्याद्यावज्जीवन्तु सूतकम् ।
एवं गुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ॥ ११ ॥
सूतके मृतके चैव तथा च मृतसूतके ।
एतत् संहतशौचानां मृताशौचेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ।
दशाहात्तु परं शौचं विप्रोऽर्हति च धर्मवित् ॥ १३ ॥
दानं च विधिना देयमशुभात्तारकं हि तत् ।
मृतकान्ते मृतो यस्तु सूतकान्ते च सूतकम् ॥ १४ ॥
एतत्संहतशौचानां पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ।
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥ १५ ॥
चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसञ्चयनं द्विजैः ।
ततः सञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥ १६ ॥
वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेको यदा पतिः ।
दश षट् त्र्यहमेकाहः प्रसवे सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥
स्वस्थकाले त्विदं सर्वमशौचं परिकीर्तितम् ।
आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥ १८ ॥
यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताथ म्रियेत वा ।
पूर्वसङ्कल्पिते कार्ये न दोषस्तत्र विद्यते ॥ १९ ॥

यज्ञकाले विवाहे च देवयागे तथैव च ।
हूयमाने तथा चाग्नौ नाशौचं नापि सूतकम् ॥ २० ॥

अथ शङ्खस्मृतिः । (६)

३५४—जनने मरणे चैव सपिण्डानां द्विजोत्तमः ।
त्र्यहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ १ ॥
सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुद्ध्यति ॥ २ ॥
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुद्ध्यति ।
मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धिमाप्नोति नान्तरा ॥ ३ ॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति ।
अजातदन्तबाले तु सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४ ॥
अहोरात्रात् यथा शुद्धिर्बाले त्वकृतचूड़के ।
तथैवानुपनीते तु त्र्यहाच्छुद्ध्यन्ति बान्धवाः ॥ ५ ॥
अनूढानां तु कन्यानां तथैव शूद्रजन्मनाम् ।
अनूढभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्परम् ॥ ६ ॥
मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बान्धवाः ।
शुद्धिं समधिगच्छेयुर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥
पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ॥ ८ ॥
हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत् ।
प्रसवे मरणे तज्जमाशौचं नोपशाम्यति ॥ ९ ॥
*समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ।
असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ १० ॥
देशान्तरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ ।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ ११ ॥

---

* समानाशौचसम्पाते—इति पाठान्तरम् ।

अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ।
परपूर्वासु च स्त्रीषु त्र्यहाच्छुद्धिरिहेष्यते ॥ १३ ॥
मातामहे व्यतीते तु आचार्ये च तथा मृते ।
गृहे दत्तासु कन्यासु मृतासु तु त्र्यहस्तथा ॥ १४ ॥
निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे ।
आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥ १५ ॥
मातुले पक्षिणी रात्रिः शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ।
सब्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥ १६ ॥
एकरात्रं त्रिरात्रं च षड्रात्रं मासमेव च ।
शूद्रे सपिण्डे वर्णानामशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १७ ॥
त्रिरात्रमथ षड्रात्रं पक्षं मासं तथैव च ।
वैश्यसपिण्डे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १८ ॥
सपिण्डे क्षत्रिये शुद्धिः षड्रात्रं ब्राह्मणस्य च ।
वर्णानां परिशिष्टानां द्वादशाहं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषतः ।
दशरात्रेण शुद्ध्येयुरित्याह भगवान्यमः ॥ २० ॥
भृग्वग्न्यनशनांभोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ।
पतितानां च नाशौचं शस्त्रविद्युद्धताश्च ये ॥ २१ ॥
यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः ।
नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये ॥ २२ ॥
यस्तु भुङ्क्ते पराशौचे वर्णी सोऽप्यशुचिर्भवेत् ।
अशौचशुद्धौ शुद्धिश्च तस्याप्युक्ता मनीषिभिः ॥ २३ ॥
पराशौचे नरो भुक्त्वा कृमियोनौ प्रजायते ।
भुक्त्वान्नं म्रियते यस्य तस्य योनौ प्रजायते ॥ २४ ॥
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ।
प्रेतपिण्डक्रियावर्जमाशौचे विनिवर्तते ॥ २५ ॥

अथ लिखितस्मृतिः । (१०)

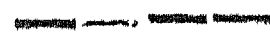
३५५—बालश्चैव दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
सद्य एव विशुद्ध्येत नाशौचं नोदकक्रिया ॥
शावसूतक उत्पन्ने सूतकन्तु यदा भवेत् ।
शावेन शुद्ध्यते सूतिः न सूतिः शावशोधिनी ॥
षष्ठेन शुद्ध्यतेकाहं पञ्चमे त्र्यहमेव तु ।
चतुर्थे सप्तरात्रं स्यात् त्रिपुरुषे दशमेऽहनि ॥
मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः ।
आदाहं तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥

अथ अत्रिस्मृतिः । (१२)

३५६—अतः परं प्रवक्ष्यामि सूतकस्य विनिर्णयम् ।
प्रायश्चित्तं पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥ १ ॥
एकाहात् शुद्ध्यते विप्रोयोऽग्निवेदसमन्वितः ।
त्र्यहात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥ २ ॥
व्रतिनः शास्त्रपूतस्य आहिताग्नेस्तथैव च ।
राज्ञां तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥ ३ ॥
ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
सपिण्डानां तु सर्वेषां गोत्रजः साप्तपौरुषः ।
पिण्डाश्चोदकदानं च शावशौचं तथानुगम् ॥ ५ ॥
चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षडहः पञ्चमे तथा ।
षष्ठे चैव त्रिरात्रं स्यात् सप्तमे त्र्यहमेव वा ॥ ६ ॥
मृतसूतके दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते भर्तरि योनिकम् ॥ ७ ॥
शवस्पृष्टं तृतीये तु सचैलं स्नानमाचरेत् ।
चतुर्थे सप्तभिर्द्यं स्यादेवं शवविधिः स्मृतः ॥ ८ ॥



एकत्र संस्कृतानां तु मातृणामेकभोजनम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्नं मृतसूतके ।
पाचकान्नं नवश्राद्धं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १० ॥
सूतकान्नमधर्माय यस्तु प्राश्नाति मानवः ।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ॥ ११ ॥
महायज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ।
होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ १२ ॥
बालश्चैव दशाहे तु पञ्चत्वं यदि गच्छति ।
सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ १३ ॥
कृतचूडे प्रकुर्वीत उदकं पिण्डमेव च ।
स्वधाकारं प्रकुर्वीत उदकं पिण्डमेव च ॥ १४ ॥
ब्रह्मचारी यतिश्चैव मन्त्रे पूर्वकृते तथा ।
यज्ञे विवाहे काले च सद्यः शौचं विधीयते ॥ १५ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वसंकल्पितार्थस्य न दोषश्चात्रिरब्रवीत् ॥ १६ ॥
मृतसजननोर्ध्वं तु सूतकादौ विधीयते ।
स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकाञ्चैन्न संस्पृशेत् ॥ १७ ॥
पञ्चमेऽहनि विज्ञेयं स्पर्शनं क्षत्रियस्य तु ।
सप्तमेऽहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥ १८ ॥
दशमेऽहनि शूद्रस्य कर्तव्यं स्पर्शनं बुधैः ।
मासेनैवात्मशुद्धिः स्यात् सूतके मृतके तथा ॥ १९ ॥
व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ।
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ २० ॥
व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ।
श्राद्धत्यागविहीनस्य भस्मान्तं सूतकं भवेत् ॥ २१ ॥



अथ यमस्मृतिः । (१४)

३५७—सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ।
द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुद्धयति ॥ १ ॥
जातेन शुद्धयते जातं मृतेन मृतकं तथा ।
गर्भसंस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्धयति ।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ३ ॥
अनूढा न पृथक् कन्या पिण्डगोत्रे च सूतके ।
पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां स्वगोत्रात् भ्रश्यते ततः ॥ ४ ॥
येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ।
तत्समं सूतकं याति तथा पिण्डोदकेऽपि च ॥ ५ ॥
विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ।
एकत्वं सा व्रजेत् भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥ ६ ॥
प्रथमेऽहनि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ।
अस्थिसंचयनं कार्यं बन्धुभिर्हितबुद्धिभिः ॥ ७ ॥
चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा ।
अस्थिसंचयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ८ ॥
दैवे भये समुत्पन्ने प्रधानाङ्गे विनाशिते ।
पूर्वसंकल्पिते चार्थे तस्मिन्नाशौचमिष्यते ॥ १ ॥ (कृत्यसारसमुच्चये)

———

अथ संवर्तस्मृतिः (१५)

३५८—विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः ।
क्षत्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पञ्चदशैव तु ॥ १ ॥
शूद्रः शुद्धयति मासेन संवर्तवचनं तथा ।
प्रेतायान्नं जलं देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ॥ २ ॥
प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ।
चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसञ्चयनं द्विजैः ॥ ३ ॥

ततः सञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ।
चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वै क्षत्रियस्य च ॥ ४ ॥
अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद् वैश्यशूद्रयोः ।
जातस्यापि विधिर्दृष्ट एष एव महर्षिभिः ॥ ५ ॥
दशरात्रेण शुद्ध्येत विप्रो वेदविवर्जितः ।
जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ॥ ६ ॥
माता शुद्ध्येद् दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ।
होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥ ७ ॥
पञ्चयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनोः ।
दशाहात्तु परं सम्यग्विप्रोऽधीयीत धर्मवित् ॥ ८ ॥

अथ लघ्वत्रिस्मृतिः (११)

३५९—सूतके मृतके चैव मृतान्ते च प्रसूतके ।
तस्मात्तु सङ्गताशौचे मृताशौचेन शुद्ध्यति ॥
सूतकाद् द्विगुणं शावं शावाद् द्विगुणमार्तवम् ।
आर्तवाद्द्विगुणा सूतिस्ततोऽपि शवदाहकः ॥
अनुगच्छेद्यथा प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ।

अथ वृद्धात्रि-स्मृतिः (१२)

३६०—शावे शवगृहं गत्वा श्मशाने वान्तरेऽपि वा ।
आतुरं व्यंजनं कृत्वा दूरस्थोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥
अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति ॥
अशुद्धःस्वयमप्यन्यानशुद्धांस्तु यदि स्पृशेत् ।
स शुद्ध्यत्युपवासेन भुङ्क्ते कृच्छ्रेण स द्विजः ॥
सूतकं सूतके स्पृष्ट्वा स्नानं शावे च सूतके ।
भुक्त्वा पीत्वा तदज्ञानादुपवासी त्र्यहं भवेत् ॥

मृण्मयानां च पात्राणां देहे शुद्धिर्विधीयते ।
स्नानादिषु प्रयुक्तानां त्याग एव विधीयते ॥
सूतके मृतके चैव मृतके च प्रसूतके ।
तस्मात्तु संहताशौचे मृताशौचेन शुद्ध्यति ॥
सूतकाद् द्विगुणं शावं शावाद् द्विगुणमार्तवम् ।
आर्तवाद् द्विगुणं सूतिस्ततोऽधिशवदाहकः ॥
अनुगम्येच्छया प्रेतमज्ञानो बन्धुमेव च ।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥
रात्रिं कुर्यात् त्रिभागं तु द्वौ भागौ पूर्व एव वा ।
उत्तरांशप्रभातेन युज्यते ऋतुसूतके ॥

अथाङ्गिरसस्मृतिः (१८)

३६१—दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ।
पाक्षिकं वैश्य एवाह शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥

अथ आपस्तम्बस्मृतिः (१९)

३६२—विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतिसूतके ।
सद्यः शुद्धिं विजानीयात् पूर्वं संकल्पितं चरेत् ॥
देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रततेषु च ।
कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशौचं मृतसूतके ॥

अथ विष्णुस्मृतिः (२०)

३६३·—ब्राह्मणस्य सपिण्डानां जननमरणयोर्दशाहमाशौचम् । द्वादशाहं राजन्यस्य । पञ्चदशाहं वैश्यस्य । मासं शूद्रस्य । सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते । अशौचे होमदानप्रतिग्रहस्वाध्याया निवर्तन्ते । नाशौचे कस्यचिदन्नमश्नीयात् । ब्राह्मणादीनामशौचे

यःसकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषाम्। अशौचापगमे प्रायश्चित्तं कुर्यात्। सवर्णस्याशौचे द्विजो भुक्त्वा स्रवन्तीमासाद्य तन्निमग्नस्त्रिरघमर्षणं जप्त्वोत्तीर्य्य गायत्र्यष्टसहस्रं जपेत्। क्षत्रियाशौचे ब्राह्मणस्त्वेतदेवोपोषितः कृत्वा शुद्ध्यति। वैश्याशौचे राजन्यश्च। वैश्याशौचे ब्राह्मणस्त्रिरात्रोपोषितश्च। ब्राह्मणाशौचे क्षत्रियः क्षत्रियाशौचे वैश्यः स्रवन्तीमासाद्य गायत्रीशतपञ्चकं जपेत्।

वैश्यश्च ब्राह्मणाशौचे गायत्र्यष्टशतं जपेत्।
शूद्राशौचे द्विजो भुक्त्वा प्राजापत्यव्रतञ्चरेत्॥

शूद्रश्च द्विजाशौचे स्नानमाचरेत्। शूद्रः शूद्राशौचे स्नानः पञ्चगव्यं पिबेत्। पत्नीनां दासानामनुलोमेन स्वामिनस्तुल्यमशौचम्। मृते स्वामिन्यात्मीयम्। हीनवर्णानामधिकवर्णेषु तदपगमे शुद्धिः। ब्राह्मणस्य क्षत्रविट्शूद्रेषु षड्रात्रत्रिरात्रैकरात्रैः। क्षत्रियस्य विट्शूद्रयोः षड्रात्रत्रिरात्राभ्याम्। वैश्यस्य शूद्रेषु षड्रात्रेण। मासतुल्यैरहोरात्रैर्गर्भस्रावे। जातमृते मृतजाते वा कुलस्य सद्यः शौचम्। अदन्तजाते बाले प्रेते सद्य एव। नास्याग्निसंस्कारो नोदकक्रिया। दन्तजाते त्वकृतचूडे त्वहोरात्रेण कृतचूडे त्वसंस्कृते त्रिरात्रेण। ततः परं यथोक्तकालेन। स्त्रीणां विवाहः संस्कारः। संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौच भवति पितृपक्षे। तत्प्रसवमरणे चेत् पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं च। जननाशौचमध्ये यद्यपरं जननाशौच स्यात्तदा पूर्वाशौचव्यपगमेन शुद्धिः। रात्रिशेषे दिनद्वयेन। प्रभाते दिनत्रयेण मरणाशौचमध्ये ज्ञातिमरणेऽप्येवम्। श्रुत्वा देशान्तरस्थजननमरणे शेषेण शुद्ध्येत्। व्यतीतेऽशौचे संवत्सरान्तस्त्वेकरात्रेण। ततः परं स्नानेन। आचार्य्यमातामहे च व्यतीते त्रिरात्रेण, अनौरसेषु पुत्रेषु जातेषु च मृतेषु च, परपूर्व्वासु भार्य्यासु प्रसूतासु मृतासु च। आचार्य्यपत्नीपुत्रोपाध्यायमातुलश्वशुरश्वशुर्य्यसहाध्यायिशिष्येष्वतीतेष्वेकरात्रेण, स्वदेशराजनि च असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते च। भृग्वग्न्यनाशकाम्बुसंग्रामविद्युन्नृपहतानां नाशौचम्। न राज्ञो राजकर्मणि। न व्रतिनां व्रते न सत्रिणां सत्रे। न कारूणां स्वकर्मणि। राजाज्ञाकारिणां तदिच्छया। न देवप्रतिष्ठाविवाहयोः पूर्वसंभृतयोः। न देशविप्लवे। आपद्यपि च कष्टायाम्। आत्मत्यागिनः पतिताश्च नाशौचोदकभाजः। पतितस्य दासी मृतेऽन्हि पादाभ्यां घटमपवर्ज्जयेत्। उद्बन्धमृतस्य यः पाशं छिन्द्यात् स तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति। आत्मघातिनां संस्कर्ता च। तदश्रुपातकारी च। सर्वस्यैव प्रेतस्य बान्धवैः सहाश्रुपातं कृत्वा स्नानेन। अकृते त्वस्थिसंचये सचैलस्नानेन। द्विजः शूद्रप्रेतानुगमनं कृत्वा स्रवन्तीमासाद्य तन्निमग्नस्त्रिरघमर्षणं जप्त्वोत्तीर्य्य गायत्र्यष्टसहस्रंजपेत्। द्विजप्रेतस्याष्टशतम्। शूद्रप्रेतानुगमनं कृत्वा स्नानमाचरेत्। चिताधूमसेवने सर्वे वर्णाः स्नानमाचरेयुः।

शवस्पृशं च स्पृष्ट्वा पञ्चनखशवं तदस्थि सस्नेहञ्च ।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरेत् ।
प्रेताहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥
आचार्य्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ।
निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥
आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात् ।
समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥
ज्ञान तपोऽग्निराहारो मृण्मनोवार्य्युपाञ्जनम् ।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धिकर्तॄणि देहिनाम् ॥

अथ औशनसस्मृतिः । [१७]

३६४—दशाहं प्राहुराशौचं सपिण्डेषु विपश्चितः ।
मृतेऽथवाऽथ जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमाः ॥
नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः ।
न कुर्याद्विहितं किञ्चित् स्वाध्यायं मनसापि च ॥
शुचिरक्रोधनस्त्वन्यान् कालेऽग्नौ भोजयेद् द्विजान् ।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि पितरं जुहुयात्तथा ॥
न स्पृशेयुरिमानन्ये न भूतेभ्यः समाचरेत् ।
सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो नैव दुष्यति ॥
सूतके सूतकाञ्चैव वर्जयित्वा नृणां पुनः ।
अधीयानस्तथा यज्वा वेदविच्चापि यो भवेत् ॥
चतुर्थे पञ्चमे वाह्नि संस्पर्शः कथितो बुधैः ।
स्पृश्यास्तु सर्व एवैते स्नानात्तु दशमेऽहनि ॥
दशाहं निर्गुणं प्रोक्तमाशौचन्दासनिर्गुणे ।
एवं द्विगुणैर्युक्तं चतुरश्चैकदिने शुचिः ॥
दशाहात्तु परं सम्यगधीयीत जुहोति च ।
चतुर्थे त्वस्य संस्पर्शो मनुराह प्रजापतिः ॥
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च ।
येषां मरणस्याद्धूमरणान्तमशौचकम् ॥

त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मणानामशौचकम् ।
प्राक् संस्कारात् त्रिरात्रं स्याद्दशरात्रमतः परम् ॥
जन्मद्विवर्षगे प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते ।
त्रिरात्रेण शुचिस्त्वन्यो यदिह्यात्यन्तनिर्गुणः ॥
अदन्तजातमरणे मातापित्रोस्तदिष्यते ।
जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद्दन्तः स्यात् यत्र निर्णयः ॥
जन्मद्विवर्षगे प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते ।
त्रिरात्रेण शुचिस्त्वन्यो यदिह्यात्यन्त्यनिर्गुणः ॥
आदन्तजन्मनः सद्य आचौलादेकरात्रकम् ।
त्रिरात्रमुपनयनाद्दशरात्रमुदाहृतम् ॥
जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः ।
मातुश्च सूतकादि स्यात् पितास्य स्पृश्य एव हि ॥
सद्यः शौचं सपिण्डानां कर्तव्यं सोदरस्य तु ।
ऊर्ध्वं दशाहादेकाहः सोदरो यदि निर्गुणः ॥
अथोर्ध्वं दन्तजन्म स्यात् सपिण्डानामशौचकम् ।
एकरात्रं निर्गुणानां चौलादूर्ध्वं त्रिरात्रकम् ॥
आदन्तजातमरणं सम्भवेद्यदि सत्तमाः ।
एकरात्रं सपिण्डानां यदि चात्यन्तनिर्गुणः ॥
व्रतादेशात्सपिण्डानां गर्भस्रावश्च पाततः ।
गर्भच्युतावहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे ॥
यथेष्टाचरणाद् ज्ञातौ त्रिरात्रादिति निर्णयः ।
सूतके यदि सूतिश्च मरणे वा गतिर्भवेत् ॥
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे द्विरात्रकम् ।
मरणोत्पत्तियोगे तु मरणेन समाप्यते ॥
अर्द्धवृत्तिमनाशौचमूर्ध्वमन्येन शुद्ध्यति ।
देशान्तरगतः श्रुत्वा सूतकं शाव एव वा ॥
तावदप्रयतोऽन्ये वा यावच्छेषं समाप्यते ।
अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डानां त्रिरात्रकम् ॥
तथैव मरणे स्नानमूर्द्ध्वं संवत्सराद् व्रती ।
वेदांश्च यस्त्वधीयानो न भवेत् वृत्तिकर्षितः ॥

सद्यः शौचं भवेत्तस्य सर्वावस्थासु सर्वदा ।
स्त्रीणामसंस्कृतानां तु प्रदानात् परतः पितुः ॥
सपिण्डानां त्रिरात्रं स्यात् संस्कारो भर्तुरेव च ।
अहस्त्वदत्तकन्यानामशौचं मरणे स्मृतम् ॥
द्विवर्षजन्ममरणे सद्यः शौचमुदाहृतम् ।
आदन्तात् सोदरः सद्यः आचौलादेकरात्रकम् ॥
आवृत्तानां त्रिरात्रं स्याद्दशमन्तु ततः परम् ।
मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम् ॥
एकोदराणां विज्ञेयं सूतके चैतदेव हि ।
पक्षिणी यौनसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च ॥
एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि ।
प्रेते राजनि सद्यस्तु यस्य स्याद्विषये स्थितः ॥
गृहे मातासु दत्तासु कन्यकासु त्र्यहं पितुः ।
परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कुलजेषु च ॥
त्रिरात्रं स्यात्तथाचार्ये भार्यासु प्रत्यगासु च ।
आचार्यपुत्रपत्न्योश्च त्र्यहोरात्रमुदाहृतम् ॥
एकरात्रमुपाध्याये तथैव श्रोत्रियेषु च ।
एकरात्रं सपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च ॥
त्रिरात्रं श्वश्रूमरणे श्वशुरेण तथैव च ।
सद्यः शौचं समुद्दिष्टं सगोत्रे संस्थिते सति ॥
शुद्ध्येत् द्विजो दशाहेन द्वादशाहेन भूपतिः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥
क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य सेवकाः ।
तेषामशेषं विप्रस्य दशाहात् शुद्धिरिष्यते ॥
राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु ।
षड्रात्रं वा त्रिरात्रं वाप्येकरात्रं क्रमेण हि ॥
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रे आशौचमेव तु ।
अर्द्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुङ्गवाः ॥
शूद्रक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमिष्यते ।
षड्रात्रं द्वादशाहं च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः ॥

आशौचं क्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेण द्विजपुङ्गवाः ।
शूद्रविट्क्षत्रियाणां तु ब्राह्मणे संस्थिते यदि ॥
दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलोद्भवः ।
असपिण्डं द्विजप्रेतं विप्रो निसृत्य बन्धुवत् ॥
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुद्ध्यति ।
यदि निर्दहति क्षिप्रं प्रलोभाक्कान्तमानसः ॥
दशाहेन द्विजः शुद्ध्येत् द्वादशाहेन भूमिपः ।
अर्द्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥
षड्रात्रेणाथवा सप्तत्रिरात्रेणाथवा पुनः ।
अनाथं चैव निर्वन्धुं ब्राह्मणं धनवर्जितम् ॥
स्नात्वा संप्राश्य तु घृतं शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणादयः ।
अपरश्चेत्परं वर्णमपरश्चापरो यदि ॥
एकाहात् क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये तु स्यात् द्व्यहे सति ।
शूद्रेषु च त्र्यहं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः ॥
अनस्थिसंचिते शूद्रे रौति चेत् ब्राह्मणः स्वकैः ।
त्रिरात्रं स्यात्तथाशौचमेकाहं क्षत्रवैश्ययोः ॥
अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणे स्नानमेव वा ।
अनस्थिसञ्चिते विप्रे ब्राह्मणो रौति चेत्तदा ॥
स्नानेनैव भवेच्छुद्धिः सचैलेन न संशयः ।
यस्तैः सहान्नं कुर्याच्च पानादीनि तु चैव हि ॥
ब्राह्मणो वा परो वापि दशाहेन विशुद्ध्यति ।
यस्तेषामन्नमश्नाति स तु देवोऽपि कामतः ॥
तदाशौचनिवृत्तेषु स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ।
यावत्तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतो नरः ॥
तावन्त्यहान्यशुद्धिः स्यात् प्रायश्चित्तं ततश्चरेत् ।
दाहाद्यशौचं कर्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणा ॥
सपिण्डानां तु मरणे मरणादितरेषु च ।
सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥

लेपभाजस्तु यश्चात्मा सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ।
ऊढ्यानां चैव सापिण्ड्यमाह देवः प्रजापतिः ॥
ये चेह जाता बहवो भिन्नयोनय एव च ।
भिन्नवर्णास्तु सापिण्ड्यं भवेत्तेषां त्रिपूरुषम् ॥
कारवः शिल्पिनो वैश्या दासीदासास्तथैव च ।
राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥
दातारो नियमी चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ ।
सत्रिणो व्रतिनस्तावत् सद्यः शौचमुदाहृतम् ॥
राजा चैवाभिषिक्तश्च प्राणसत्रिण एव च ।
यज्ञे विवाहकाले च देवयागे तथैव च ॥
सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे वाप्युपद्रवे ।
विषाद्युपहतानाञ्च विद्युता पार्थिवे द्विजैः ॥
सद्यः शौच समाख्यातं सर्पादिमरणेऽपि च ।
अग्निमेरुप्रपतने विषो धान्यपराशने ॥
गोब्राह्मणान्ते संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ।
नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणां ॥
नाशौचं विद्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते ।

कात्यायनस्मृतिः (२०]

३६५—सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ।
होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेनापि वा फलैः ॥
अकृतं हावयेत् स्मार्ते तदभावे कृताकृतम् ।
कृतं वा हावयेत् अन्नमन्वारम्भविधानतः ॥
कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम् ।
व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥
सूतके च प्रवासेषु चाशक्तौ श्राद्धभोजने ।
एवमादि निमित्तेषु हावयेदिति योजयेत् ॥
न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित् ।
न दीक्षणात्परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥
पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् ।
आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात्त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम् ॥

इति स्मृतिसंग्रहाधिकारः ।

अथ वचनसंग्रहाधिकारे ।

१—नानामुनिवचनानि । [२१]

३६६—देये पितॄणां श्राद्धे वै आशौचं जायते यदि ।
आशौचे तु व्यतीते वै तेषां श्राद्धं प्रदीयते ॥

(ऋष्यशृङ्गः)—शुचिभूतेन दातव्यं या तिथिः प्रतिपद्यते ।
सा तिथिस्तत्र कर्तव्या न त्वन्या वै कदाचन ॥

(श्रीदत्तः)--प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमाशौचोत्पतितं च यत् ।
मलमासेऽपि कर्तव्यमिति भागुरिरब्रवीत् ॥

(ज्योतिषे)—पित्रा दत्ता तु या कन्या स्वातन्त्र्यादन्यमाश्रिता ।
यं यं श्रितवती भूयस्तस्याशौचं त्र्यहं त्र्यहम् ॥

(स्मृतिः)—मृतायां वा प्रसूतायां नान्येषामिति निश्चयः ।
कामादत्ततयोनिश्चेदन्यं गत्वा व्यवस्थिता ॥
"तस्यान्यस्य सगोत्रा सा यं त्वाश्रितवती स्वयम्" ।
गर्भस्रुत्या यथामासमचिरे तूत्तमे त्र्यहम् ॥
राजन्ये तु चतूरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव तु ।
अष्टावहानि शूद्रायाः शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥

(मरीचिः)—संध्यां पञ्चमहायज्ञान्नैत्यकं स्मृतिकर्म च ।
तन्मध्ये हापयेत् तेषां दशाहान्ते पुनः क्रिया ॥
निमन्त्रणं तु वा श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति स्मृतिः ।
मरणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च ॥
शाककाष्ठतृणेष्वेवं दधिसर्पिःपयःसु च ।
तैलोषध्यजिने चैव पक्वापक्वे स्वयंगृहे ॥
पुण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके ॥

पुराणवचनानि ।

३६७—आजन्मनस्तु चूडान्तं यत्र कन्या विपद्यते ।
सद्यः शौचं भवेत् तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः ॥
ततो वाग्दानपर्य्यन्तं यावदेकाहमेव हि ।
अतः परं प्रविद्धानां त्रिरात्रमिति निश्चयः ॥
वाग्दाने तु कृते तत्र ज्ञेयं चोभयतस्त्र्यहम् ।
पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तुरेव हि ॥ ब्रह्मपुराणे ॥
दत्ता नारी पितुर्गेहे सूयते म्रियतेऽथवा ।
स्वमशौचं चरेत् सम्यक् पृथक् स्थाने व्यवस्थिता ।
तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन शुद्ध्येत जनकस्त्रिभि. ॥ ब्रह्मपु० ॥
षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद् यदि ।
तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते ।
अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तमशौचं तासु विद्यते ।
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ॥ ब्रह्मपुराणे ॥
अनतीतद्विवर्षस्तु प्रेतो यत्रापि दह्यते ।
अतिमोहाभिभूतैश्च देशसाधर्म्यमादरात् ॥
आशौचं ब्राह्मणानां तु त्रिरात्रं तत्र विद्यते ।
राज्ञामेकादशाहं तु वैश्यानां द्वादशाहकम् ।
अपि विंशतिरात्रं तु शूद्राणां भवति क्रमात् ॥ १ ॥
भिन्नगोत्राः पृथक् पिण्डाः पृथक् गोत्रकरास्तथा ।
सूतके मृतके चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः ॥
गृहीतमधुपर्कस्य यजमानाच्च ऋत्विजः ।
पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः ॥
आद्यभागद्वयं यावत् सूतकस्य तु सूतके ।
द्वितीये पतिते चाद्यात् सूतकाच्छुद्धिरिष्यते ।
अत ऊर्ध्वं द्वितीयात्तु सूतकान्नाच्छुचिः स्मृतः ॥

३६८—यान्येतान्यार्षवचनानि प्रदर्शितानि तेषां मध्ये कतिपयानां तात्पर्य्यार्थविनिर्णये विद्वांसो विप्रवदन्ते । केचिदन्यथा तदर्थं मन्यन्तेऽपरेऽन्यथा । एवं केषांचिद्वचनानामार्षत्वमभिप्रेत्य प्रामाण्यमभ्युपगच्छन्ति तदनुसारेणैव व्यवस्थामातिष्ठन्ते ।

परे त्वनार्षत्वं तेषामभिप्रेत्य तान्यनादृत्यान्यथा व्यवस्थापयन्ति ॥ १ ॥

एवं केषांचित् वचनान्नामेके ग्रन्थकाराः स्वग्रन्थे स्थानं ददतेऽपरे पुनः स्वग्रन्थे तान्यपठित्वा तत् सत्त्वमेवास्वीकृत्य यथेच्छमन्यथा व्यवस्थापयन्ति । एभिरेव कारणैरत्राशौचविषये प्रमाणव्यवस्थापकानां विदुषां परस्परविरुद्धतर्कैः प्रवर्तमानानां परस्परविरोधे युक्तमयुक्तं वा पश्यतां बहवो मतभेदा दृश्यन्ते । तत्र किं सत्यं किमसत्यमिति निर्द्धारयिष्यन्त्युत्तरे विशिष्टा विद्वांस–इत्यलम् ।

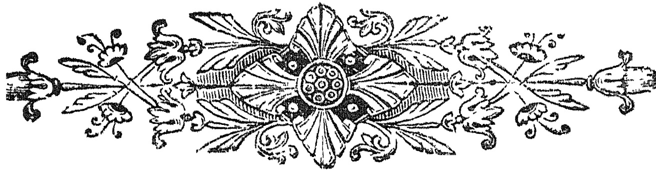
३६९—इतोन्येऽप्याशौचसम्बन्धिनो बहवो नियमास्तत्र तत्र प्रकरणान्तरेपूल्लिखिता दृश्यन्ते तथाविधानि च वचनान्यप्रस्तुतांशभूयस्त्वादिह पृथक्कृत्य नापदर्श्यन्ते । तदुक्ता नियमास्तु पूर्वमिह ग्रन्थे तत्र तत्र प्रकरणे प्रदर्शिता एवेति सुविमृश्य संतोष्टव्यम् ।

३७०—अयं च ग्रन्थः प्रमाणभूतानां विधायकानामार्षवचनानां तथा प्रामाणिकानां व्यवस्थापकानां निबन्धग्रन्थानां चाधारेण मया संपादितः । तत्रैतान्यार्षवचनानि प्रदर्शितानि ॥

३७२—सन्त्याशौचविनिर्णये बहुविधा ग्रन्था बुधैर्निर्म्मिता–
स्ते तर्कैर्जटिला न संप्रतिसुखेनार्थावबोधक्षमाः ।
तत्सिद्धान्तसमुच्चयं, पृथगिवाकष्टाय सुस्पष्टयन्
तस्माच्छ्रीमधुसूदनो व्यतनुताशौचे समीक्षामिमाम् ॥ १ ॥

३७३—शुद्धिर्वाप्यृषिदेवसपदिति वा संस्कारधर्मौ द्विधा ।
तत्रैतां न विना विशुद्धिमपरो धर्मः क्वचित् सिध्यति ॥
शुद्धिः पञ्चविधा हि सा निगदिता तासां तृतीयाधुना ।
सुख्याति लभतां चिरं प्रचरतादाशौचशुद्धिर्भुवि ॥ २ ॥

*** इति शुद्धिसिद्धान्तापञ्चिकान्तर्गता आशौचपञ्जिका समाप्ता ***



५४ द्वैतपरिशिष्टः—	श्रीदत्तोपाध्यायस्य
५५ स्मृत्यर्थनिर्णयः—	गोकुलनाथोपाध्यायस्य
५६ नरसिंहप्रसादः—	नरसिंहस्य
५७ कृत्यसार समुच्चय—	अमृतनाथोपाध्यायस्य
५८ विधानपारिजातः—	अनन्तभट्टस्य
५९ पराशरमाधवः—	सायणमाधवस्य
६० निर्णयसिन्धुः—	कमलाकर भट्टस्य
६१ मिताक्षरा—	विज्ञानेश्वराय
६२ चतुर्वर्गचिन्तामणिः—	हेमाद्रिसूरेः

इति प्रमाणसंग्रहाध्यायो दशमः ॥ १० ॥

* श्रीः *

अथ शुद्धयशुद्धिपत्रम्

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
३	६	दोष	दोषे
७	१	प्रदिक्षणं	प्रदक्षिणं
६	८	अहिताग्ने	आहिताग्ने
६	२४	व्यवस्थ	व्यवस्था
११	३	कर्मैव	काल एव
११	८	यथ	यथा
११	२१	श्रद्ध	श्राद्ध
१३	२१	दग्धप्रायत्वात्	दग्धप्रायत्वात्
१३	२२	चयुः	चायुः
१४	७	त्यागदियं	त्यागादियं
१४	११	चेतनाधा ो	चेतनाधातो
१४	१६	थ	अथ
१४	१६	प्रसारः	प्रसादः
१४	२१	दोविसत्व	दोषिसत्व
१५	१३	दुपलम्भ	दुपलम्भं
१५	१४	शक्यं	शक्यः
१५	१५	पुरुषदेकविंश	पुरुषादेकविंशं
१६	१६	वद्धितें	वद्धितैः
१७	३०	केचित्त	केचित्तु
१६	२८	तामह	पितृमातामह
२२	१०	द्वन्द्वनां	द्वन्द्वानां
२२	११	संख्यां	संख्या
३२	८	अष्टाविशति	अष्टाविंशति
३४	१६	उदकदाम्	उदकदानम्
४१	६	अन्यपूर्वा,आरुद्धा	अन्यपूर्वावरुद्धा
४२	२३	जनयितृसपिण्डानाम्	जनयितृसपिण्डानां प्रतिग्रहीतृसपिण्डानाञ्चैकाहः। एवं प्रतिग्रहीतृसपिण्डानां दत्तकजनयितृसपिण्डानाम्
४२	२६	पितुतस्योः	पितुस्तयोः
४३	१७	रसाङ्कोर्वी	नगरसाङ्कोर्वी
४४	२४	कूर्यादित्येकः	कुर्यादित्येकः
४६	२०	दीपवंशात्	दोषवशात्
४६	८	मुपनीत	नुपनीत
५४	२	वैमाऽत्रेय	वैमात्रेय
५४	१०	दकगोत्राणां	दवसगोत्राणां
५४	२२	द्विसंबंधा	द्विधा सम्बन्धा
५६	१८	आचार्यपत्नि	आचार्यपत्नी
५६	२७	मरणे	मरणे गुरोः पत्निणी। वेदे यत्किञ्चिदध्यापितस्य शिष्यस्य मरणे
५७	१	सहायधयिनो	सहाध्यायिनो
५७	१०	श्रौत्रियादि	श्रोत्रियादि
५७	१२	कर त्रम्	एकरात्रम्

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
५८	३	सप्तानामयेषां	सप्तानामप्येषां
५९	२	स्पर्श	स्पर्शन
६०	४	अज्ञादुपवासः	अज्ञानादुपवासः
६१	१७	सपत्निसंस्कारे	सपत्नीसंस्कारे
६१	२३	असबन्धे	असम्बन्धे
६१	२४	तत्राद्यस्या	तत्राद्यस्या
६५	३	सपाताशौचम्	सम्पाताशौचम्
६८	११	बलत्वात्	बलवत्वात्
६९	१४	निवत्ति	निवृत्ति
७५	१४	शौचधिक्य	शौचाधिक्य
७५	२२	पक्षिण	पक्षिणी
७६	८	२७०।२७१	२७३।२७४
७७	२१	तीरमुक्ति	तीरभुक्ति
७७	२५	तीरमुक्तौ	तीरभुक्तौ
८२	१७	तत्रोष्टम्भक	तत्रोपष्टम्भक
८५	६	पतिभिनिहत	पतिभिर्निहत
८६	१६	त्रिषष्टितमे	पञ्चषष्टितमे
८६	२०	दशाहशौचं	दशाहमाशौचं
८६	२२	विथानं	विधानं
८६	२५	दशाहाद्य सौचं	दशाहाद्याशौचं
८८	१४	दन्तजातो	दन्तजाते

पृष्ठम्	पंक्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
८९	२४	यच्छेशं	यच्छेषं
९१	१८	प्रेतशुद्धि	प्रेतशुद्धिं
९२	७	एव	एष
९५	३	शुचि	शुचिः
९९	११	तावन्निबोधतः	तावन्निबोधत
१०३	११	पतेतच्छेषेण	पतेत्तच्छेषेण
१०३	१३	विपोदको	विषोदको
१०३	१४	स्तनमातुर्वा	स्तन्मातुर्वा
१०६	२३	धमराज	धर्मराज
११०	२१	दशाह	दशाह
११५	२२	गति	मृति
११५	२७	दष्ठप्रयतो	दृप्रयतो
११६	६	आचौखा	आचौता
११७	१५	रीति	रौति
११७	१८	रीति	रौति
११८	२	उद्ध्यानां	ऊर्ध्वानां
११९	१८	हावयेत्	हापयेत्
१२०	५	प्रविद्धानां	प्रवृद्धानां
१२०	१६	साधर्म्य	साधर्म्यं
१२१	१	त्वनाषत्वं	त्वनार्षत्वं

